राम-चरित्र

राम-चरित

लेखक :
स्वामी विद्यानन्द 'विदेह'

देव-प्रकाशन, अजमेर

सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रथम संस्करण : १९५८

एक रुपया पचास नये पैसे

प्रकाशक : देव-प्रकाशन, अजमेर
मुद्रक : आदित्य मुद्रणालय, अजमेर

प्राक्कथन

आचार्य श्री विदेह जी की यह कृति, 'राम-चरित', सचमुच गागर में सागर भरने की कहावत को चरितार्थ करती है। इसमें राम-चरित को बड़ी सरलता और मनोरंजकता के साथ वाल्मीकीय रामायण के आधार पर धारावाहिक कथा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महर्षि महाकवि वाल्मीकि की रामायण में, जैसा कि 'महाभारत' ग्रन्थ-रत्न में हुआ, प्रक्षेप आगये हैं। विद्वान् लेखक ने स्वाभाविकता को ध्यान में रखते हुये अपनी कृति में समाधान किया है। भाषा सरल, सुगम है। साधारण पाठकों के लिये भी सुबोध है। पुनर्जागरण और विज्ञान के इस युग में ऐसी सुन्दर पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी। श्री विदेह जी ने यह पुस्तक लिखकर बड़ा काम किया है। यह पुस्तक घर-घर में होनी चाहिये।

झांसी,

२२ फ़रवरी, १९५८

वृन्दावनलाल वर्मा

प्रकाशकीय

वेद-संस्थान, अजमेर के मासिक पत्र 'सविता' में जनवरी, १९५१ से अगस्त, १९५४ तक श्री 'विदेह' ने वाल्मीकि-रचित 'रामायण' के आधार पर सरल, सुबोध भाषा में एक लेखमाला लिखी थी। उसमें भगवान् राम की जीवन-गाथा को मानवीय दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया था, और श्री राम के जीवन के साथ जो अलौकिक तथा असम्भव प्रतीत होने वाली घटनायें जोड़ दी गई हैं, उनका बुद्धिपरक और युक्तियुक्त समाधान करने का भी सुन्दर प्रयत्न किया गया था। इन लेखों को सामान्य संशोधन तथा कुछ परिवर्धन के साथ पुस्तकाकार रूप में हिन्दी-भाषी जनता की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। आशा है, यह पुस्तक श्री राम के जीवन-चरित के प्रति सही दृष्टि-कोण का जनता में प्रचार करने में सफल सिद्ध होगी। श्री 'विदेह' के, लेखमाला को प्रकाशित करने की अनुमति प्रदान करने के लिये, हम अति कृतज्ञ हैं।

—प्रकाशक

लेखक की अन्य रचनायें :

वेद-व्याख्या-ग्रन्थ (दो भाग)

गायत्री

गायत्री-मन्त्र का अनुष्ठान

महामृत्युञ्जय-मन्त्र का अनुष्ठान

सार्वभौम आर्य साम्राज्य

वैदिक बाल-शिक्षा (दो भाग)

वैदिक योग-पद्धति

सन्ध्या-योग

स्वस्तियाग

यज्ञोपवीत-रहस्य

संस्कृत-शिक्षा (दो भाग)

सत्यनारायण की कथा

सत्संग-गीतावली

दिव्य भावना

राम-चरित

भूमिका

सुहावनी वसन्त ऋतु में एक दिन ऋषि वाल्मीकि पंचवटी पर जंगल की सैर करने निकले। देखा, पुष्पों से लदे एक वृक्ष पर क्रौंच पक्षियों का एक युगल [जोड़ा] परस्पर क्रीडा कर रहा है। सहसा पीछे से एक निषाद ने तीर छोड़ा, जिससे नर क्रौंच घायल होकर नीचे गिर पड़ा और भूमि पर पड़ते ही उसका प्राणान्त हो गया। बेचारी मादा क्रौंच चीत्कार करती हुई इधर-उधर उड़ने लगी। ऋषि दयार्द्र हो गये और अनायास ही उनके मुख से एक अनुष्टुप्-छन्दीय श्लोक प्रसरित हुआ। ऋषि ने काममोहित क्रौंचमिथुन में-से एक के घातक उस निषाद को समाज में कभी भी मान-प्रतिष्ठा प्राप्त न हो सकने का शाप दे डाला।

ऋषि ने दयाकुल होकर उस श्लोक को बार-बार पढ़ा। उन्हें वह श्लोक बहुत प्रिय लगा। सोचा, "इसी श्लोक [छन्द] में राम का चारु चरित्र चित्रित करदूं।" "राम आदर्श पुरुष हैं," ऋषि ने सोचा, "राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं, जितेन्द्रिय और धीर हैं, शान्त और गम्भीर हैं, अनासक्त और निर्लेप हैं।"

"जब सायं सम्राट् दशरथ ने कहा, 'राम, प्रातः तुम्हारा राज्याभिषेक होगा', और जब प्रातः कैकेयी ने कहा, 'राम, तुम्हें सद्यः चौदह वर्ष के लिए वन जाना है,' दोनों ही अवसरों पर राम की प्रसन्नवदनता में लेशमात्र भी अन्तर दिखाई नहीं पड़ा। ऐसे राजयोगी राम के चरित्र को काव्यबद्ध करने से निस्सन्देह मानव जाति का बड़ा उपकार होगा।" ऐसा विचार कर, वाल्मीकि ऋषि ने चौबीस हजार श्लोकों से युक्त "रामायण" महाकाव्य की सुरचना की।

वाल्मीकि ऋषि महाराज राम के समकालीन थे। अतः ऐतिहासिक जिज्ञासुओं के लिए राम-चरित से परिचित होने को वाल्मीकीय रामायण ही एकमात्र स्वतः-प्रमाण ग्रन्थ है।

स्वयं वाल्मीकीय रामायण भी अलंकारों तथा प्रक्षिप्त श्लोकों से आच्छादित होने के कारण अनेक भ्रान्तियों का भण्डार बनी हुई है। अन्तर्निहित इतिहासतत्त्व दृष्टि से इतना ओझल हो गया है कि वास्तविक इतिहास की समाधानकारक संगति बिठाना बड़ा दुस्तर प्रतीत होता है। स्थान-स्थान पर ऐसी-ऐसी बातें लिखी मिलती हैं जो आधुनिक मानवी बुद्धि को असम्भव प्रतीत होती हैं। प्रस्तुत लेखों में रामायण की कथा को न केवल धारावाही सरल, सुबोध भाषा में सामान्य पाठक के अभिमुख रखने का प्रयास किया गया है, वरन् असम्भव व अति-लौकिक-सी प्रतीत होने वाली घटनाओं की बुद्धियुक्त संगति लगाने का भी यत्न किया गया है।

'विदेह'

: १ :

महाराज दशरथ के समय में कोसल राज्य आर्यावर्त के ही नहीं, अपि तु विश्व के समस्त राज्यों में सबसे अधिक समृद्ध, सशक्त और सम्पन्न राज्य बन गया था। राजधानी थी अयोध्या नगरी, जिसे प्रारम्भ में मनु ने बसाया था। यह नगरी सरयू नदी के किनारे-किनारे ४८ कोस [६० मील] लम्बी और तीन कोस [४ मील] चौड़ी बसी हुई थी। नगरी तृण और धूलि से सर्वथा रहित थी। उसमें जल और विद्युत् का प्रचुर प्रबन्ध था। राजधानी के भीतर बड़े-बड़े उद्यान थे। गृहों के आंगनों में फलवती और पुष्पित वाटिकायें तथा यज्ञशालायें थीं। नगरी के चारों ओर दूर-दूर तक वनोपवन लहराते थे।

संसार में सबसे बड़ी और सुन्दरतम नगरी होने के अतिरिक्त, अयोध्या उस समय ज्ञान-विज्ञान तथा कला-कौशल का भी केन्द्र थी। समस्त भूमण्डल के मानी मानव यहां आकर ज्ञान, विज्ञान, धर्म, संस्कृति और आचार की शिक्षा प्राप्त किया करते थे। इसका श्रेय विशेषत: महाराज दशरथ को ही था। उनके आठ अमात्य [सचिव] थे : धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्र। महर्षि वसिष्ठ थे राजगुरु, और, ऋषि वामदेव थे राजपुरोहित। चारों ओर के उपवनों में अनेक मेधावी तपोधन ऋषियों के आश्रम थे।

महाराज दशरथ जितने संयमी, सदाचारी और जितेन्द्रिय थे, उतने ही महत्त्वाकांक्षी भी थे। सिंहासनारूढ़ होते समय केवल महारानी कौसल्या ही उनकी एक-मात्र भार्या थीं। उन्होंने संकल्प किया कि अश्वमेध यज्ञ किये बिना वे पुत्रेष्टि यज्ञ [गर्भाधान संस्कार] न करेंगे, अर्थात् अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न होने तक अखण्ड ब्रह्मचारी रहेंगे। **अश्व** का अर्थ है राष्ट्र और **मेध** [मिधृ, मेधृ] का अर्थ है संगम। एक सम्राट् के आधिपत्य में भूमण्डल के समस्त राष्ट्रों या राज्यों के संगतिकरण अथवा समूहन को **अश्वमेध** कहते हैं। अश्वमेध [विश्वशासन] प्रस्थापन कर चुकने पर अश्वमेध-प्रस्थापक राजा अपनी राजधानी में एक सार्वभौम राज-आयोजन करता है, जिसमें विश्व के समस्त राजे उपस्थित होकर अश्वमेधकर्ता राजा को अपना महाराजा अथवा सम्राट् स्वीकार करते हैं और यज्ञाग्नि में आहुति देकर समाट् के प्रति अपनी निष्ठा [वफ़ादारी] की शपथ ग्रहण करते हैं। इस राज-आयोजन को **अश्वमेध-यज्ञ** कहते हैं। अश्वमेध अथवा विश्व-शासन के लाभ प्रत्यक्ष हैं।

: २

सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही वर्ष पश्चात् महाराज दशरथ ने कतिपय विश्वसमस्याओं तथा विश्वयुद्धों में अपने शौर्य और अपनी कुशल नीतिमत्ता तथा पटु राजनीतिकता से आश्चर्यजनक सफलतायें तथा विजय प्राप्त कीं, जिनसे महाराज की सार्वभौम ख्याति, प्रसिद्धि तथा प्रतिष्ठा की प्रचुर अभिवृद्धि

हुई। समस्त भूमण्डल के राजे-महाराजे उनका बहुत मान करने लगे।

उस समय की मर्यादा के अनुसार प्रत्येक पुरुष एक ही विवाह करता था और एकपत्नीक ही रहता था। उस समय की मर्यादा के अनुसार केवल अविवाहित राजकुमार ही राज-कन्याओं के स्वयम्वरों में आमन्त्रित किए जाया करते थे। परन्तु उनकी अनुपम प्रतिभा तथा प्रतिष्ठा के कारण विवाहित तथा सपत्नीक होने पर भी महाराज दशरथ दो अन्य स्वयम्वरों में भी आमन्त्रित किये गये। महाराज उन स्वयम्वरों में सफल हुए, जिसके परिणामस्वरूप महाराज दशरथ त्रिपत्नीक होगये।

अच्छा यही होता कि महाराज दशरथ एकपत्नीक होजाने पर अन्य स्वयम्वरों में सम्मिलित होने से इन्कार कर देते और दो अन्य भार्याओं का वरण न करते। परन्तु उन दिनों के रिवाज़ के अनुसार स्वयम्वर का निमन्त्रण प्राप्त होने पर स्वयम्वर में न जाना कायरता का लक्षण समझा जाता था। महाराज को दो बुराइयों में से एक का चुनाव करना अनिवार्य हो गया और उन्होंने अपयश पर त्रिपत्नीकता को वरणीयता [तरज़ीह] दी।

लगभग ४८ वर्ष की आयु में महाराज दशरथ अश्वमेध यज्ञ करने में सफल हुए। भूमण्डल के समस्त राजे अथवा उनके प्रतिनिधि अयोध्या में उपस्थित हुए और महाराज दशरथ को अपना सम्राट् स्वीकार करके उनके प्रति राज-निष्ठा की शपथ ग्रहण की। प्रत्येक देश का राजदूत अयोध्या में रहने लगा और अयोध्या से सार्वभौम न्याय-शासन का सूत्र-

संचालन होने लगा।

अश्वमेध यज्ञ के पश्चात् आदित्य ब्रह्मचारी महाराज दशरथ ने वसन्त ऋतु में ऋष्यशृङ्ग ऋषि के पौरोहित्य में पुत्रेष्टि यज्ञ [गर्भाधान संस्कार] किया, जिसके फलस्वरूप चैत्र शुक्ला नवमी को पुनर्वसु नक्षत्र में महारानी कोसल्या ने राम को, कैकेयी ने भरत को तथा सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न को जन्म दिया। चारों राजकुमारों का एक ही दिन थोड़े-थोड़े समय के अन्तर से जन्म हुआ। सबसे पूर्व राम, तत्पश्चात् भरत, फिर लक्ष्मण और सबसे पीछे शत्रुघ्न जन्मे। लक्ष्मण और शत्रुघ्न सजात [जुड़वां, जौल्ला] उत्पन्न हुए थे।

राजकुमारों के जन्म के उपलक्ष में बड़े-बड़े भव्य उत्सव किये गये और देशविदेशों के समस्त माण्डलिक राजाओं से महाराज दशरथ को बधाइयों के सन्देश प्राप्त हुए। जातकर्म, नामकरण आदि संस्कार यथासमय होते रहे और चारों राजकुमार चन्द्रकलाओं के समान कलान्वित होते हुए सुन्दर, स्वच्छ, धार्मिक और ओजमय वातावरण में सर्वतः अभिवृद्धि को प्राप्त होने लगे।

: ३ :

सोलह वर्ष की आयु तक चारों राजकुमारों का शिक्षण महारानी कोसल्या और ऋषि वसिष्ठ के संरक्षण में हुआ।

राम अतिशय सौम्य, सत्यमृदु-भाषी, न्यायपरायण, धर्मानुरागी, दयालु, विद्याप्रेमी, वृद्धोपसेवी, वीर, पराक्रमी, निर्लेप, अनासक्त, जितेन्द्रिय, धीर, ईश-भक्त और मर्यादापालक थे।

भरत थे अतिशय साधुस्वभाव, वीतराग, शान्तिप्रिय, मितभाषी और मर्यादापालक।

लक्ष्मण थे उग्र, उद्धत, युद्धप्रिय, जितेन्द्रिय और कटुभाषी।

शत्रुघ्न थे उदासीनवृत्ति, निःस्पृह, सरलस्वभाव, तटस्थ और मधुरभाषी।

वसिष्ठ ऋषि ने विचार किया कि राम और लक्ष्मण को शस्त्रास्त्र की विशेष शिक्षा दिलाना अतिशय उपादेय होगा। राजकुमारों की १६ वर्ष की वय पूर्ण होने पर ऋषि वसिष्ठ ने ऋषि विश्वामित्र को अयोध्या आने के लिये आमन्त्रित किया।

ऋषि विश्वामित्र के अयोध्या-आगमन पर ऋषि-द्वय ने महाराज दशरथ के सम्मुख यह प्रस्ताव उपस्थित किया, "राजकुमार राम और लक्ष्मण विशेषतया वीर प्रकृति के हैं। हमारा अनुरोध है कि उन्हें युद्धविज्ञान तथा वैज्ञानिक शस्त्रास्त्र का विशेष शिक्षण प्राप्त कराया जाये। तदर्थ दोनों कुमारों को कुछ काल के लिये सिद्धाश्रम भेजा जाये।"

महाराज ने विचार-विमर्ष के उपरान्त तदर्थ स्वीकृति दे दी और ऋषि विश्वामित्र दोनों कुमारों को अपने सिद्धाश्रम में लिवा लाये।

विश्वामित्र राजर्षि से ब्रह्मर्षि बने थे। वे अपने युग के सर्वोत्कृष्ट योद्धा और युद्धविज्ञान-विशारद थे। शस्त्रास्त्र-संचालन के भी वे अद्वितीय शिक्षक थे। उनके सुविशाल आश्रम का नाम सिद्धाश्रम था, जो एक गहन अरण्य में स्थित था।

अयोध्या से सिद्धाश्रम जाते हुए ताडका वन में ऋषि

विश्वामित्र तथा कुमारों की कतिपय साहसिकों से मुठभेड़ हुई, जिसमें नेत्री, ताडका के सहित सब साहसिक मारे गये। ताडका का पुत्र मारीच और सुबाहु जीवित बचकर भाग जाने में सफल हुए।

:४:

राम और लक्ष्मण ने सिद्धाश्रम में बारह वर्ष निवास किया और विश्वामित्र ऋषि ने उन्हें निम्नलिखित ७२ शस्त्रास्त्रों का सांगोपांग ज्ञान तथा अभ्यास कराया :

१. दिव्यास्त्र, २. दण्डचक्र, ३. धर्मचक्र,
४. कालचक्र, ५. विष्णुचक्र, ६. इन्द्रचक्र,
७. वज्रास्त्र, ८. शिवशूल, ९. ब्रह्मशिर,
१०. एषीकास्त्र, ११. ब्रह्मास्त्र, १२. कौमोदकी,
१३. शिखरी, १४. धर्मपाश, १५. वरुणपाश,
१६. शुष्काशनि, १७. आर्द्राशनि, १८. पिनाकास्त्र,
१९. नारायणाग्नेयास्त्र, २०. शिखराग्नेयास्त्र,
२१. मथनवायवास्त्र, २२. असिरत्न,
२३. हयशिरास्त्र, २४. क्रौंचास्त्र, २५. कंकाल,
२६. मूसल, २७. कपाल, २८. किंकिणी,
२९. वैद्याधरास्त्र, ३०. गन्धर्वास्त्र, ३१. मोहनास्त्र,
३२. सौम्यास्त्र, ३३. प्रस्वापनास्त्र, ३४. प्रशमनास्त्र,
३५. सौम्यवर्षणास्त्र, ३६. पैशाचास्त्र, ३७. सौमनास्त्र,
३८. मायास्त्र, ३९. सोमास्त्र, ४०. प्रतिहारतरास्त्र,
४१. लक्ष्यास्त्र, ४२. अलक्ष्यास्त्र, ४३. दृढनाभास्त्र,

४४. सुनाभास्त्र, ४५. दशाक्षास्त्र, ४६. शतवक्त्रास्त्र,
४७. दशशीर्षास्त्र, ४८. शतोदरास्त्र, ४९. निष्कल्यस्त्र,
५०. सर्पास्त्र, ५१. वरुणास्त्र, ५२. शोषणास्त्र,
५३. सन्तापनास्त्र, ५४. विलापनास्त्र, ५५. मदनास्त्र,
५६. तामसास्त्र, ५७. सत्यास्त्र, ५८. सौरास्त्र,
५९. सूर्यास्त्र, ६०. पराङ्मुखास्त्र,
६१. अवाङ्मुखास्त्र, ६२. पद्मनाभास्त्र,
६३. महानाभास्त्र, ६४. दुन्दुनाभास्त्र, ६५. ज्योतिषास्त्र,
६६. नैराश्यास्त्र, ६७. विमलास्त्र, ६८. विनिद्रास्त्र,
६९. शुचिबाहु-अस्त्र, ७०. आवरणास्त्र, ७१. विधूमास्त्र,
७२. पन्थानास्त्र ।

: ५ :

आयुधविज्ञान का पूर्ण पाण्डित्य सम्पादन करके राम व लक्ष्मण सिद्धाश्रम से अयोध्या के लिये प्रस्थान करनेवाले ही थे कि ऋषि विश्वामित्र को मिथिला में सीता-स्वयंम्वर की सूचना मिली । ऋषि विश्वामित्र ने दोनों कुमारों को साथ लेकर मिथिला के लिये प्रस्थान किया । मिथिला जाते हुए मार्ग में गौतमाश्रम आया । ऋषि विश्वामित्र ने राम को बताया कि "एक बार ऋषि गौतम की अनुपस्थिति में राजा इन्द्र गौतमाश्रम चले आये । कुछ देर आश्रम में विहार करके इन्द्र आश्रम से चले गये । गौतम ने अपने आश्रम को लौटते हुए इन्द्र को आश्रम से बाहर निकलते हुए देख लिया । गौतम सन्देहवृत्ति के व्यक्ति थे । उन्हें लगा कि इन्द्र उनकी अनुपस्थिति

में उनकी भार्या अहल्या से मिलकर जारहा है। इस पर गौतम अहल्या को त्यागकर एक निकटवर्ती आश्रम में जाकर पृथक् रहने लगे। देवी अहल्या वर्षों से गौतमाश्रम में अकेली रह रही हैं।"

तीनों गौतमाश्रम में प्रविष्ट हुए और राम व लक्ष्मण ने देवी अहल्या के चरणों पर शिर रखकर प्रणाम किया। इन तीनों से मिलने के लिये ऋषि गौतम दौड़े हुए वहां आये। ऋषि विश्वामित्र और राम ने अहल्या व गौतम का परस्पर का मनमुटाव दूर किया और दोनों फिर गौतमाश्रम में बड़े प्रेम के साथ एक जगह रहने लगे।

गौतम व अहल्या ने विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण का बड़े प्रेम से आतिथ्य किया। तदुपरान्त तीनों मिथिला को चल पड़े।

: ६ :

मिथिलाधीश महाराजा जनक ने ऋषि का बड़ा सत्कार-पूर्ण स्वागत किया। ऋषि ने महाराजा जनक को दोनों राजकुमारों का परिचय कराया।

ज्येष्ठ बन्धु साथ होने के कारण लक्ष्मण ने स्वयम्वर में भाग लेना उचित नहीं समझा। शिव-धनुष के दो टुकड़े करके राम ने स्वयम्वर की यत्कीयता [शर्त] पूरी की और सीता ने परम हर्षित होकर राम के गले में वरमाला पहनाई। स्वयम्वर के समय राम २८ वर्ष के थे और सीता १८ वर्ष की।

इससे सिद्ध होता है कि (१) राम व लक्ष्मण ने ऋषि विश्वामित्र के आश्रम में १२ वर्ष निवास किया था, (२) राम व लक्ष्मण सिद्धाश्रम में ताडका का वध करने के हेतु नहीं भेजे गये थे, अपि तु शस्त्रास्त्र-विद्या का सांगोपांग ज्ञान प्राप्त कराने के लिये भेजे गये थे, (३) ऋषियों के आश्रमों में उस समय शस्त्रसंचालन-सहित युद्ध-विद्या भी सिखाई जाती थी।

: ७ :

'सीता' शब्द का अर्थ है 'हल का फाला।' महाराज जनक खेती किया करते थे और स्वयं हल भी चलाया करते थे। प्रत्येक फ़सल में भूमि में हल चलाने से पूर्व वे सीता यज्ञ किया करते थे। सीता यज्ञ महाराज को ऐसा प्रिय था कि उन्होंने अपनी ज्येष्ठा पुत्री का नाम भी सीता रख दिया।

महाराज जनक के दो पुत्रियां थीं, सीता तथा उर्मिला। जनक महाराज के कनिष्ठ बन्धु, कुशध्वज की भी दो पुत्रियां थीं, माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति। महाराज जनक की इच्छानुसार ऋषि विश्वामित्र ने एक विशेष दूत के साथ महाराज दशरथ को एक निजी पत्र भेजा, जिसमें स्वयम्वर की सूचना देते हुए महाराज को यह प्रेरणा की गई थी कि वे भरत, शत्रुघ्न तथा विशिष्ट परिजनों-सहित अवसरोचित सेना व बरात लेकर शीघ्र मिथिला आजायें। महाराजा दशरथ ने पत्र पाते ही पूर्ण सज्जा के साथ मिथिला को यथाशीघ्र प्रस्थान किया और साथ ही अपने सम्बन्धी राजाओं के पास विशेष दूतों द्वारा सन्देश भजा कि वे शीघ्र मिथिला पहुंच जायें। अन्यान्य

राजाओं के अतिरिक्त भरत के मामा युधाजित् भी मिथिला पहुंच गये।

जनक ने दशरथ के प्रति यह इच्छा व्यक्त की कि राजकुमार राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न का विवाह क्रमशः राजकुमारी सीता, उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति के साथ सम्पन्न किया जाये। दशरथ के सहमत होजाने पर चारों राजकुमारों तथा चारों राजकुमारियों का विवाह संस्कार एक साथ सम्पन्न किया गया।

विवाहोपरान्त, अयोध्या को आते हुए, मार्ग में ऋषि परशुराम से भेंट हुई। अपने वैष्णव धनुष से राम की परीक्षा लेकर परशुराम अत्यधिक संतुष्ट हुए।

कुछ दिन अयोध्या में विश्राम कर महाराज युधाजित् राजकुमार भरत व शत्रुघ्न और उनकी वधुओं सहित अपनी राजधानी को लौट गये। भरत और शत्रुघ्न में परस्पर उतना ही प्रेम था जितना राम और लक्ष्मण में। जहां भरत जाते थे वहीं शत्रुघ्न भी जाते थे।

: ८ :

महाराजा दशरथ का सम्पूर्ण जीवन संघर्षों और संग्रामों में व्यतीत हुआ था। वे अब ७६ वर्ष के होगये थे। एक दिन उन्हें सहसा विचार आया कि अपने सर्वतः सुयोग्य, ज्येष्ठ पुत्र, राम को युवराज बनाकर वे अपना शेष जीवन शान्ति के साथ व्यतीत करें। उस समय की प्रथा के अनुसार कोई भी सामान्य राजा अपने ज्येष्ठ पुत्र को युवराज बना सकता था। परन्तु

महाराजा दशरथ सामान्य राजा न थे, सम्राट् थे। अतः राम को युवराज बनाने के लिये अपने माण्डलिक राजाओं की सहमति प्राप्त करना आवश्यक था।

एक नियत तिथि पर समस्त माण्डलिक राजे अथवा उनके प्रतिनिधि अन्तर्राष्ट्रीय राजधानी, अयोध्या में एकत्रित हुए। विश्वसंसद् में राजप्रमुख की प्रतिष्ठिति [हैसियत] से स्वयं महाराजा दशरथ ने राम को युवराज बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसे विश्वसंसद् ने स्वीकार किया। इस प्रस्ताव की सर्वसम्मत स्वीकृति पर अपना हर्ष प्रकट करते हुए एक प्रतिनिधि ने कहा :

(१) विश्वमण्डल में राम सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं।

(२) राम अतिशय शालीन, संयमी और मर्यादापालक हैं।

(३) राम सदा-सर्वत्र प्रजाजनों से कुशल पूछते हैं और उनके स्वास्थ्य, परिवार, आचार, सन्ध्या, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन आदि के विषय में प्रश्न करते हैं।

(४) मार्ग में जाते हुए, राम वृद्धों, देवियों और रोगियों के लिये स्वयं मार्ग छोड़कर चलते हैं।

(५) राम सुशील, सौम्य, मृदु, मितभाषी, जितेन्द्रिय, धीर, गम्भीर, धर्मात्मा, न्यायकारी, वीर, पराक्रमी और हंसमुख हैं।

(६) राम प्रीतिपात्र, उदार, क्षमाशील, निर्व्यसन, निर्विलास और सर्वप्रिय हैं।

विश्वसंसद् को धन्यवाद देते हुए महाराजा दशरथ ने कहा, "अहो, कितना हर्षकर अवसर है। यौवराज्य के लिये मेरे ज्येष्ठ, प्रिय पुत्र का आपके द्वारा चुना जाना मेरे लिये सौभाग्य

का विषय है ।"

: ६ :

राम के युवराज चुने जाने पर विश्वसंसद् के समस्त राज-सदस्यों ने महाराजा दशरथ को यह प्रेरणा की कि राम का राज्याभिषेक अगली प्रातः ही सम्पादन कर दिया जाये, ताकि उन्हें अपनी राजधानियों से अधिक अनुपस्थित न रहना पड़े और दूसरी बार अयोध्या आने में उन्हें पुनः अपनी राजधानियों को न छोड़ना पड़े । महाराजा दशरथ ने इस आग्रह को सहर्ष स्वीकार कर लिया । महर्षि वसिष्ठ सद्यः तैयारियों में लग गये। राजमहलों, दरबार और राजधानी में सजावटें होने लगीं ।

महाराजा दशरथ ने राम को बुलाया और आदेश दिया, "राम, कल प्रातः तुम्हारा राज्याभिषेक है । तुम और सीता उपवास करो और रात्रि में कुशशय्या पर शयन करो । कल प्रातः गायत्री-जाप तथा अग्निहोत्र से निवृत्त होकर तुम्हें नियत समय पर दरबार में उपस्थित होना है ।" "तथास्तु" कहकर राम अपने महल को चले गये ।

अगली प्रातः जब मन्थरा ने कैकेयी के महल में प्रवेश किया तो कैकेयी अपने महल की सजावट का निरीक्षण करती हुई अन्तः-प्रांगण में इधर-उधर टहल रही थी । मन्थरा ने कैकेयी को प्रणाम करके अपने मनोभावों को छिपाते हुए कहा, "राम के यौवराज्य के लिये आपको बड़ा उत्साह प्रतीत हो रहा है ।" कैकेयी ने मुस्कराते हुए एक बहुमूल्य हार पुरस्कार-स्वरूप मन्थरा को दिया ।

हार उतारकर महारानी को लौटाते हुए मन्थरा बोली, "महारानी, राम के यौवराज्य में मैं आपका बड़ा अहित देखती हूं। राम के यौवराज्य से कौसल्या का सौभाग्योदय होगा और आपका दुर्भाग्य।"

कैकेयी बोली, "चुप, मन्थरा। राम में या भरत में मैं कोई अन्तर नहीं समझती। अतः मैं प्रसन्न हूं कि राजा दशरथ राम का राज्याभिषेक कर रहे हैं।"

"आपकी यह प्रसन्नता अनिष्टसूचक है, महारानी।"

"इस शुभावसर पर मैं ऐसी बातें नहीं सुनना चाहती, मन्थरा। राम मुझे भरत से भी अधिक प्यारा है। राम कौसल्या से भी अधिक मेरा मान करता है। भरत राम को प्राणों से प्यारा है। राम मानवता का पुष्प, धर्म का अवतार और समस्त मानव प्रजा का दुलारा है।"

"आपकी हितकामना मुझे प्रेरित करती है कि समय रहते मैं आपको चेता दूं।"

"मन्थरा, तुम क्या बकवास कर रही हो," कहते हुए कैकेयी ने अपने विशिष्ट भवन में प्रवेश किया। मन्थरा गम्भीर और विकल मुद्रा में पीछे-पीछे चली जा रही थी।

: १० :

महारानी कैकेयी एक सुखासन [आरामकुर्सी] पर आसीन होकर मन्थरा को सम्बोधन करते हुए बोलीं, "मन्थरा, तुम्हें आज किस अनिष्ट की आशंका ने व्यथित किया हुआ है?"

महारानी, राम के राजा बनने पर आपकी वह गौरवपूर्ण

स्थिति नहीं रह सकती जो अब है ।"

"परन्तु किया भी क्या जा सकता है? विश्वसंसद् ने सर्व-सम्मति से राम को युवराज स्वीकार किया है। चारों राज-कुमारों में ज्येष्ठ होने से वैसे भी राम ही राजा बनने चाहियें।"

"महारानी, देवासुर-संग्राम में जब शम्बासुर ने महाराजा दशरथ को घायल करके मूर्छित कर दिया था, तब आपने उन्हें रणक्षेत्र से सुरक्षित बचा लेजाकर उनकी प्राणरक्षा की थी। तत्पश्चात् महाराजा रण में विजयी हुए थे।"

"तो, उससे इस समय क्या ?"

"महारानी, उस समय महाराजा ने प्रसन्न होकर आपसे कोई भी दो वर मांगने को कहा था।"

"हां, कहा था।"

"उस समय आपने कोई भी वर नहीं मांगा था।"

"फिर, अब क्या ?"

"उस समय आपने दो वरों को धरोहर रूप में रहने देने को कहा था।"

"हां, ऐसा ही हुआ था।"

"और, महारानी, महाराजा ने उन दो वरों को कभी भी मांग लेने का आपको अधिकार दिया था।"

"हां, दिया था।"

"तो, महारानी, उन दो वरों को महाराजा से अब मांग लो।"

"मैं समझी। दो वर किस प्रकार मांगे जायें ?"

"प्रथम, राम को चौदह वर्ष के लिये वनवास। द्वितीय, भरत को चौदह वर्ष के लिये राजसिंहासन।"

"परन्तु, इससे तो समस्या का समाधान न होगा। क्यों न राम को सदा के लिये वनवास और भरत को सदा के लिये राजसिंहासन ?"

"ऐसा करने से समस्त माण्डलिक राजे बिगड़ उठेंगे। स्वयं कोसल राज्य की प्रजा का विरोध अपरिहार्य होगा।"

"चौदह वर्ष की अवधि के लिये क्या ऐसा न होगा ?"

"होगा, महारानी, परन्तु कम। चौदह वर्ष पश्चात् राम के पुनरागमन की आशा से विरोध इतना तीव्र रूप धारण न करेगा। महाराजा को भी कम वेदना होगी।"

"चौदह वर्ष पश्चात् क्या होगा ?"

कूटनीतिक मुस्कराहट के साथ मन्थरा बोली, "चौदह वर्ष के दीर्घ काल में पुत्र भरत के पैर भली प्रकार जम जायेंगे। अपने मोहक शील-स्वभाव, और प्रजाहितकारी कार्यों तथा उदार शासन से प्रजा का स्नेह पूर्णतया प्राप्तकर, वह उनके हृदयों को जीत लेगा। फिर, चौदह वर्ष बाद जब राम लौटेंगे तो भरत की जड़ें गहरी जमी हुई पायेंगे; प्रजा सन्तुष्ट होगी ही। ऐसी स्थिति में भरत के लिये राम-रूपी कांटे को रास्ते से उखाड़ फेंकने में कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी।"

: ११ :

कैकेयी और मन्थरा का वार्तालाप समाप्त हुआ ही था कि महाराजा दथरथ ने कैकेयी के महल में प्रवेश किया। कैकेयी बोली, "राजन्, देवासुर-संग्राम में जब शंबासुर ने आपको घायल करके मूच्छित कर दिया था, तब मैंने आपको

रणक्षेत्र से सुरक्षित बचा लेजाकर आपकी प्राणरक्षा की थी।"

"हां, की थी, आर्ये।"

"उस समय के मेरे दो वर आपके पास सुरक्षित हैं। उन दो वरों को मैं आज मांगना चाहती हूं।"

"हां, हां, मांगो, प्रिये। राम के यौवराज्य के उपलक्ष में मैं सहर्ष प्रदान करूंगा।"

"मैं मांगती हूं कि इस अवसर पर भरत का राज्याभिषेक हो, और, राम आज ही यति-वेश में चौदह वर्ष के लिये वन जाये।"

"प्रिये, विनोद न करो। जो मांगना है, शीघ्र मांगो।"

"राजन्, मैं विनोद नहीं कर रही। मैं ये ही दो वर चाहती हूं।"

"देवि, मेरा, भरत का और अपना अहित न करो। राम के वन जाने पर मैं प्राण त्याग दूंगा, भरत राजगद्दी स्वीकार न करेगा। अनेक देशों से आये राजे व प्रतिनिधि क्या कहेंगे?"

"तो क्या, आप अपने वचन से फिर जाना चाहते हैं?"

"देवि, भरत का राज्याभिषेक करालो, परन्तु राम को अयोध्या में ही रहने दो।"

"यदि आप अपने वचन और अपनी प्रतिज्ञा के प्रति सच्चे हैं तो आपको मेरे दोनों ही वरों को स्वीकार करना होगा।"

महाराज व्यथित होकर एक पर्यंक पर लेट गये और मूर्च्छित होगये।

: १२ :

उधर महामन्त्री सुमन्त्र ने कैकेयी के महल में प्रवेश किया। कैकेयी को अभिवादन कर सुमन्त्र बोले, "महारानी, राम के यौवराज्य-समारोह के लिये दरबार में सब महाराज के शुभागमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"महाराज सहसा अस्वस्थ हो गये हैं, सुमन्त्र।" कैकेयी ने अन्यमनस्कता के साथ उत्तर दिया। "जाइये, राम को अविलम्ब यहां लिवा लाइये।"

"तथास्तु", कहकर सुमन्त्र सद्यः राम के प्रासाद में पहुंचे।

"सुमन्त्र का अभिवादन स्वीकार हो, युवराज," सुमन्त्र ने शीष नमाकर कहा।

"मैं बिलकुल तैयार हूं, सुमन्त्र। क्या महाराज ने मुझे दरबार में बुलाया है।" राम ने उत्सुकतापूर्वक पूंछा।

"नहीं युवराज, महाराज ने नहीं, महारानी कैकेयी ने आपको अपने महल में अविलम्ब याद किया है। महाराज भी वहीं हैं।" सुमन्त्र ने धीरे-से उत्तर दिया।

सीता से विदा ले, राम सुमन्त्र-सहित कैकेयी के महल में पहुंचे और कैकेयी को अभिवादन करके पूंछा, "क्या आज्ञा है, माता।"

कैकेयी ने झट से कहना प्रारम्भ किया, "देवासुर-संग्राम के दो धरोहररूप वर आज महाराज से मैंने मांगे तो महाराज व्यथित होकर वहां पर्यंक पर पड़ गये हैं।"

"यदि मैं उन वरों की पूर्ति में सहायक हो सकता हूं तो मैं सर्वतः समुद्यत हूं, माता।"

"मैं चाहती हूं कि राम चौदह वर्ष के लिये यतिरूप में वन में निवास करें और भरत चौदह वर्ष के लिये अयोध्या-साम्राज्य के सिंहासन को सुशोभित करे।"

प्रसन्नतापूर्वक राम ने उत्तर दिया, "जो आज्ञा, देवि। महाराज की आन रखने के लिये, मैं अभी जटाचीरधर होकर, सीधा वन को चला जाता हूं। हे माता, रोष का शमन कीजिये। मैं आपसे ठीक कहता हूं कि मैं निश्चय ही वन को चला जाऊंगा। आप प्रसन्न होइये। देवि, मैं राज्य, धन, ऐश्वर्य का ग़ुलाम नहीं हूं, न मेरा संसार में कोई अनुराग है। आप मुझे पवित्र धर्म में स्थित, और आचरण में ऋषियों के समान, ही समझिये।"

महाराज और कैकेयी को अभिवादन कर, राम कौसल्या के महल की ओर चले और सुमन्त्र दरबार की ओर गये।

: १३ :

कौसल्या प्रातः-यज्ञ से निवृत्त हुई ही थीं कि लक्ष्मण-सहित राम ने महल में प्रवेश किया। माता को अभिवादन कर राम ने उन्हें सारा हाल कह सुनाया।

"तो, तुमने क्या निश्चय किया है, राम?", माता ने शान्ति के साथ पूछा।

"माता-पिता की इच्छा का सहर्ष पालन करना सन्तान का परम धर्म है। जहां धर्म के पालन की भावना है वहां निश्चय करने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

"तुम्हारे पिता ने तो तुम्हें वन जाने के लिये कहा ही

नहीं है ।"

"पिता एक ओर मेरे मोह से विमोहित हैं तो दूसरी ओर वचनभंग का अपवाद भी तो नहीं लगना चाहिये ।"

"मैं तुम्हारी जननी हूं । मैं तुम्हें आदेश दे सकती हूं कि तुम वन न जाओ ।"

"मैं कैसे विश्वास करूं कि मेरी धर्मशीला माता मुझे कोई ऐसा आदेश देंगी जिससे मेरे धर्मात्मा पिता के प्रदत्त दो वरों की पूर्ति में बाधा पड़ती हो ।"

"परन्तु तुम्हारे यौवराज्य का निर्णय तो विश्वसंसद् ने किया है । महाराज को व्यक्तिगत निर्णय करने का अधिकार भी तो नहीं है ।"

"इस समस्या का समाधान मैंनें सोच लिया है, मातेश्वरी। आप अब मुझे अनुमति दें, क्योंकि माता कैकेयी की इच्छा है कि मैं आज ही वन को प्रस्थान करूं ।"

"तो, तनिक ठहरो, राम । मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूं ।"

"यह नहीं हो सकता, मां । पुत्र के मोह में पति के प्रति अपने कर्तव्य का विस्मरण न कीजिये । उनकी सेवा से अपने को वंचित करना आपके लिये अशोभनीय होगा । अश्रुओं के प्रवाह में अपने धर्म को प्रवाहित न कीजिये ।"

"अच्छा, जाओ, मेरे राम, जाओ । धर्म तुम्हारी रक्षा करे । धर्माधार भगवान् तुम्हारी रक्षा करें । रघुकुलाचार तुम्हारी रक्षा करें । गुरुजनों के आशीर्वाद तुम्हारी रक्षा करें । प्रजाजनों की शुभ कामनायें तुम्हारी रक्षा करें । सब प्राणियों का प्रेम तुम्हारी रक्षा करे ।"

कौसल्या को प्रणाम कर लक्ष्मण-सहित राम सीता से विदा लेने के लिये चले और कौसल्या खड़ी-खड़ी प्रभु से राम के योगक्षेम के लिये प्रार्थना करने लगीं।

: १४ :

अपने महल में आकर राम ने सीता को सब समाचार सुनाये।

"सीते, माता कैकेयी की इच्छा है कि मैं आज ही वन-गमन करूं।"

"राम, मैं आपके साथ चलने के लिये कुछ क्षणों में ही तैयार हुई जाती हूं।"

"नहीं, आर्ये, तुम्हारा मेरे साथ चलना ठीक नहीं। वनों और पर्वतों का निवास बड़ा ही कष्टसाध्य तथा असुविधापूर्ण होगा।"

दृढ़ता के साथ सीता ने प्रत्युत्तर दिया, "राम, मैं उन वनों में अवश्य जाऊंगी जहां मनुष्य भी जाते घबराते हैं, जहां नाना प्रकार के सिंहादि हिंस्र पशु विचरते हैं। मैं वन में सुख से रहूंगी राम, ऐसे ही जैसे पिता के महलों में रहती थी। मैं किसी बात की चिन्ता और विचार नहीं करूंगी; कोई विचार आयेगा तो केवल तुम्हारी सेवा का। तुम्हारी सेवा और संयमपूर्ण वन्य जीवन! जहां फल-मूलों का भोजन, सुगन्धित पुष्पों और फलों से सुवासित हमारी कुटिया होगी, वहां तुम्हारा साहचर्य ही मेरा स्वर्ग होगा। मेरे कारण तुम्हें कोई दुःख वा असुविधा नहीं होगी। मैं तुम्हारे आगे-आगे तुम्हारा

पथ प्रशस्त करती चलूंगी; तुम्हें खिलाकर खाऊंगी, शैल, वन, सरित्, सरोवरों का आनन्द लूंगी।"

"अच्छा, तो, आर्ये, अब शीघ्र चलने की व्यवस्था करो," राम ने उत्तर दिया।

"भ्रातः, मैं भी आपके साथ वनवास के लिये सर्वथा समुद्यत हूं," लक्ष्मण ने कहा।

"तुम्हारे चलने से माता सुमित्रा को बड़ी वेदना होगी, लक्ष्मण।"

"नहीं, राम, मुझे विश्वास है, मेरी जननी को इससे हार्दिक आनन्द होगा।"

"यदि ऐसा हो तो तुम भी सहर्ष चलो, वीर।"

अपने सब राजसी-वस्त्र तथा चिह्न उतारकर साधारण वस्त्र धारण करके तीनों पैदल महारानी कैकेयी के महल को जा रहे थे। कैकेयी के महल में पहुंचकर तीनों नतमस्तक महाराजा दशरथ के अभिमुख खड़े हो गये। कुछ ही क्षणों में कौसल्या तथा सुमित्रा भी वहां आ पहुंचीं।

व्यथित, मूर्छित सम्राट् के ओष्ठ हिले, "तुम मुझे बन्दी बना दो, राम, और राज्य करो। ऐसा करने से न मेरी प्रतिज्ञा भंग होगी, न तुम्हारे साथ अन्याय होगा।"

"आर्य राम ऐसा कदापि नहीं कर सकता, पिताजी।"

"तो क्या तुम मुझे सदा के लिये सकलंक करना चाहते हो, राम।"

"दोनों की अमिट कीर्ति होगी, राजन्। आपकी प्रतिज्ञा-पालन के लिये और मेरी मर्यादापालन के लिये।"

महाराज की आंखों में गहन विषाद की रेखा अवलोकन कर राम फिर बोले, 'आप विषाद को छोड़िये, पितः। क्या नदियों का स्वामी, दुर्धर्ष, समुद्र कभी क्षोभ को प्राप्त हुआ करता है।"

: १५ :

दशरथ को वेदना ने पुनः अचेत और मूर्छित कर दिया।

सुमन्त्र तथा वसिष्ठ के कैकेयी को समझाने के सब प्रयत्न सर्वथा असफल रहे।

सीता, राम और लक्ष्मण ने अपने परिधान उतार कर वल्कल वस्त्र धारण किये।

राम कैकेयी से बोले, "माता, आपकी इच्छानुसार मैं चौदह वर्ष तक यति-धर्म का पूर्णतः पालन करूंगा। वन में निवास करूंगा। नगर या ग्राम में प्रवेश न करूंगा।"

और तभी सुमन्त्र ने कैकेयी को सूचित किया, "आपके आदेशानुसार तीव्र अश्वों से युक्त वह उत्तम रथ द्वार पर उपस्थित है।"

पिता को, माताओं को तथा ऋषि वसिष्ठ को प्रणाम कर सीता, राम और लक्ष्मण बाहर जाने लगे।

सीता को छाती से लगा कर कौसल्या बोली, "सीते, कठिन और कठोर प्रसंग आने पर भी पति की निन्दा न करना।"

और सुमित्रा ने लक्ष्मण को सीने से चिमटा कर कहा, "पुत्र, राम को ज्येष्ठ भ्राता ही नहीं, दशरथ ही समझना और

सीता को अपनी मां की जगह समझना। वन ही अब तुम्हारी अयोध्या है। वत्स, अच्छी तरह जाना।"

सीता रथ पर चढ़ी, फिर राम और फिर लक्ष्मण। सुमन्त्र ने रासों को झटका और व्यथितमनस्क-से अश्व आगे बढ़े।

विशाल जनसमूह ने चारों ओर से रथ को घेर लिया। असंख्य कण्ठों से ध्वनित हुआ, "विश्वसंसद् का निर्णय नहीं बदला जा सकता। सर्वप्रिय राम को यौवराज्य से कोई वंचित नहीं कर सकता।"

रथ के ऊर्ध्व पार्श्व पर खड़े होकर, दोनों हाथों से सबको शांत करते हुए राम ने जनता को सम्बोधन किया, "आपने और विश्वसंसद् ने साम्राज्य का यौवराज्य मुझे प्रदान कर दिया। अब मैं चौदह वर्ष के लिये वनविहारार्थ जाता हूं और आदेश देता हूं कि मेरी अनुपस्थिति में भरत मेरा स्थानापन्न होकर मेरे साम्राज्य का संचालन करेगा। आप मेरे समान ही भरत को समझें और कोई ऐसा कार्य न करें जिससे गृहकलह पनपे और साम्राज्य को क्षति पहुंचे।"

राम अपने स्थान पर आ बैठे और सुमन्त्र ने रथ को तीव्र गति से दौड़ा दिया।

सब अपने-अपने घरों को चले गये और दशरथ कैकेयी के महल से कोसल्या के प्रासाद में जाकर रोगशय्या पर पड़ गये।

राजधानी मुरझा गयी। अयोध्या पर उदासी छागयी।

: १६ :

मध्याह्न में अयोध्या से प्रस्थान कर रथ के घोड़े निरन्तर

दौड़ते रहे और सायंकाल रथ तमसा नदी के तट पर पहुंचा। चारों ने सन्ध्योपासना की और जलपान कर सो गये।

प्रातः सन्ध्योपासना से निवृत्त होकर चारों पुनः रथारूढ़ हुये। इस प्रकार, तीसरी सायं रथ गंगा के तट पर एक विशाल इंगुदी वृक्ष के नीचे रुका। सन्ध्योपासना के उपरान्त निषाद, गुह आतिथ्य की सामग्री लेकर राम की सेवा में उपस्थित हुआ। यतिव्रती होने के कारण राम ने केवल घोड़ों के खाद्य पदार्थ ही स्वीकार किये और शेष सामग्री गुह को लौटा दी। फलाहार करके चारों ने शयन किया।

प्रातः चारों नित्यकर्म से निवृत्त हुये और राम सुमन्त्र से बोले, "सुमन्त्र, अब सरथ अयोध्या वापिस जाइये और पिता से हम तीनों का प्रणामपूर्वक योगक्षेम कहिये। हमारे कुशल-समाचार जानकर पिता का शोक कुछ हल्का होगा।"

सुमन्त्र ने रथ में घोड़े जोड़े।

सुमन्त्र के वाम स्कन्ध को अपने दक्षिण हस्त से स्पर्श करके राम ने कहना प्रारम्भ किया, "सुमन्त्र, पिता शीघ्र शोकरहित हो जायें, ऐसा उपाय करना।"

सुमन्त्र खड़े-खड़े नीचा शिर किये चुपचाप सुनते रहे।

"सुमन्त्र, माता कैकेयी से कहना, 'उनकी इच्छापूर्ति से हमारा कल्याण ही होगा। वे किसी भी अवसर पर किसी भी प्रकार का खेद न करें।'

"सुमन्त्र, पिता के चरणों में निवेदन करना, 'सुरम्य वनों का स्वास्थ्यप्रद और मनोहारी वातावरण हमें बड़ा अनुकूल प्रतीत हो रहा है। पिता हमारी लेशमात्र चिन्ता

न करें। भरत को शीघ्र बुलाकर उसका यौवराज्य कर दें।'

"सुमन्त्र, माता कौसल्या की सेवा में हम तीनों का आरोग्य तथा पादाभिवन्दन निवेदन करना और माता सुमित्रा के चरणों में भी।

"और, सुमन्त्र, भरत से कहना, 'तीनों माताओं की समान श्रद्धा से सेवा करे। इस प्रसंग में माता कैकेयी और पिता के साथ अप्रिय और अशालीन भाषण तथा व्यवहार न करे।"

तीनों को अभिवादन कर, रथ के जुए पर बैठकर, सुमन्त्र ने रासों को झटका और वायुवेग से घोड़े अयोध्या की ओर दौड़े।

उधर गुह द्वारा प्रस्तुत नौका से गंगा पार कर तीनों वनवासी गंगा-यमुना के संगम पर स्थित भारद्वाज ऋषि के आश्रम को लक्ष्य करके आगे बढ़े।

: १७ :

उधर, गंगा-यमुना के संगम पर भारद्वाज ऋषि के आश्रम में एक रात्रि विश्राम करके तीनों चित्रकूट पहुंचे और वाल्मीकि ऋषि के आश्रम के समीप लक्ष्मण ने काष्ठ व तृण की एक शाला निर्माण की। स्वयं तीनों ने वेदमन्त्रों से गृह-प्रवेश संस्कार किया और वहीं रहने लगे।

इधर, सुमन्त्र अयोध्या आये। कौसल्या के महल में जाकर सुमन्त्र ने महाराजा दशरथ को तीनों के समाचार सुनाये। व्यथित महाराजा ने "राम" कहते हुए रामवियोग के पांचवें दिन सदा के लिये अपने नेत्र बन्द कर लिये।

वसिष्ठ ऋषि की अनुमति से लाश तेल में डुबाकर रखदी गई और भरत-शत्रुघ्न को लिवालाने के लिये राजगृह नगर [भरत की ननिहाल] को दूत भेजे गये। दूतों को आदेश दिया गया कि वे राम के वनवास तथा दशरथ-मरण की वार्ता भरत-शत्रुघ्न को न सुनायें।

सातवीं प्रातः भरत-शत्रुघ्न ने अयोध्या में प्रवेश किया। शत्रुघ्न सुमित्रा के महल में पहुंचे और भरत कैकेयी के महल में।

माता को सश्रद्ध प्रणाम करके भरत ने पूंछा, "माता, नगर की शोकावस्था-सी क्यों है? मार्ग में आते हुए आज पुरवासियों ने मेरा अभिवादन क्यों नहीं किया? पिता तो स्वस्थ हैं?"

अश्रुमोचन करती हुई कैकेयी बोली, "महाराजा ने परसों इहलीला समाप्त करदी, भरत। अपने महाप्रयाण से पूर्व महाराजा ने राम को चौदह वर्ष के वनवास का आदेश दिया था। अतः सीता और लक्ष्मण-सहित राम चित्रकूट पर निवास कर रहे हैं।"

"धर्मात्मा राम से ऐसा क्या अपराध हुआ, माता, जो पिता ने उन्हें इतना कठोर दण्ड दिया? क्या उन्होंने परस्त्री की ओर देखा था, या वेदपाठ में अनध्याय किया था, या असत्य-भाषण अथवा प्रजाजन के साथ अन्याय किया था।"

भरत को सीने से लगाकर कंकेयी ने सम्पूर्ण वार्ता सुनायी।

: १८ :

जननी से पूर्ण वृत्तान्त सुनकर भरत जल से बाहर अपहरण

की जाती हुई मीन के समान तड़प उठे और विषादपूर्ण स्वर में बोले, "जननी, जब आप ही मुझे न पहिचान पाईं तो अन्य कोई मुझे क्या समझ पायेगा ? आपने मुझे ऐसा पतित कैसे समझ लिया कि मैं देवतुल्य राम के स्वत्व का अपहरण करने के लिये सहमत हो जाऊंगा ?"

"बच्चों की सी भोली बातें न कर, भरत। सिंहासनारूढ़ होकर ऐसी व्यवस्था कर कि चौदह वर्ष के पश्चात् राम तुझ से राज्य न छीन सके।"

"राम, और मुझसे राज्य छीनना। राम तो मेरी इच्छा-मात्र पर मुझे सदा के लिये साम्राज्य सौंप देंगे। परन्तु शोभा इसी में है कि मैं उनका सेवक बनकर उनके आदेश में रहूं। पिता के शव की अन्त्येष्टि करके मैं अविलम्ब चित्रकूट से राम को अयोध्या लाऊंगा। राम के सिंहासन पर राम के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं विराज सकता।"

"भरत, किये-कराये पर पानी न फेर। मातृस्नेह से प्रेरित होकर मैंने तेरे लिये राज्य-साम्राज्य...... ।"

"राज्य-साम्राज्य नहीं, आपने मेरे लिये पतित पातक और अमिट अपयश सम्पादन किया है, जिसे धो डालने में यदि मैं सफल न हुआ तो मैं अपने जीवन को स्वाहा कर दूंगा।"

"भरत, भावुकता में मेरे बने-बनाये कार्य को न बिगाड़। मेरी लाज रख और राजा बनकर...... ।"

"बने को बिगाड़ नहीं रहा, मुझे बिगड़े कार्य को बनाने की चिन्ता है। और लाज तो आपकी और मेरी उसी क्षण चली गयी, जिस क्षण राम अयोध्या से वन को गये। अन्तर्यामी

भगवान् तो जानते हैं कि मैं सर्वथा निर्दोष हूं, परन्तु विश्व में फैली अपनी अपकीर्ति को मैं किस प्रकार मिटाऊं। अपकीर्तित होकर राजा बनने की अपेक्षा कीर्तित होकर रंक बनना अच्छा है।"

इतना कहकर भरत विद्युत्-वेग से बाहर चले गये और कैकेयी एक नयी उलझन में उलझी हुई-सी खड़ी-की-खड़ी रह गयी।

: १६ :

कौसल्या के महल में पहुंच, कौसल्या तथा सुमित्रा को सान्त्वना देकर, भरत ने दशरथ के शव की वेद-मन्त्रों द्वारा हवि और घृत से अन्त्येष्टि की। तदुपरान्त माताओं ने तथा मन्त्रियों ने भरत को अपना राजतिलक कराने की प्रेरणा की। भरत बोले, "राम हमारे बड़े भ्राता हैं, वे ही राजा बनेंगे। मैं तो उनके स्थान में चौदह वर्ष वन में निवास करूंगा।"

अगले प्रातः दरबार लगा। वसिष्ठ ने प्रस्ताव किया, "भरत राजसिंहासन पर विराजें, क्योंकि राम अपनी प्रतिज्ञा कदापि न त्यागेंगे।"

भरत ने उत्तर में कहा, "मैं अविलम्ब चित्रकूट जाऊंगा। ज्येष्ठ भ्राता, राम का वहीं राज्याभिषेक करके उन्हें अयोध्या वापिस लाने में सब मेरी सहायता करें।"

सद्यः हाथी, घोड़े, रथ, यान सजाये गये और विशिष्ट चतुरंगिणी सेनायें तैयार हुईं। भरत ने शत्रुघ्न, तीनों माताओं, सुमन्त्र, वसिष्ठ तथा प्रमुख नागरिकों-सहित राज्याभिषेक की सामग्री साथ लेकर चित्रकूट को प्रस्थान किया। भूविशेषज्ञों

के निरीक्षण में हरावल सड़कों और पुलों की जांच तथा मरम्मत करता हुआ आगे-आगे जा रहा था।

हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, रथों की झंकार तथा सेना की थाप सुनकर लक्ष्मण एक शालवृक्ष पर चढ़ गया और इक्ष्वाकु-ध्वज तथा भरत को पहिचान कर आवेश में शस्त्र संभालते हुए बोला, "भरत सेना लेकर हम पर आक्रमण करने आ रहा है। मैं आज भरत को मारकर राज्याधिकारी को राज्य सौंपूंगा।"

राम मुस्कराये और बोले, "लक्ष्मण, तेरे, भरत के या शत्रुघ्न के बिना राज्यसम्पदा भोगना तो दूर, मैं जीना भी न चाहूंगा। साधु भरत के लिये ऐसा सोचना भी पाप है। वह तो माता कैकेयी से रुष्ट होकर मुझे लिवाने आया है। मैं अपनी प्रतिज्ञा भंग न करूंगा। चाहो तो, भरत से कहकर राज्य तुम्हें दिलादूं?"

वृक्ष से उतर कर, लक्ष्मण लज्जा से नीची दृष्टि करके पैर की अंगुलियों से भूमि कुरेदने लगा।

: २० :

हाथी, घोड़े, रथ, यान, सेनायें चित्रकूट के चारों ओर स्थित होगये। भरत, शत्रुघ्न, मातायें, वसिष्ठ, सुमन्त्र तथा प्रमुख नागरिक ऊपर चढ़े।

राम, सीता तथा लक्ष्मण पर्णशाला में सायं-यज्ञ से निवृत्त होकर सन्ध्योपासना प्रारम्भ करने को ही थे कि राम की दृष्टि सर्वाग्र आते हुए भरत पर पड़ी।

राम सद्यः उठ खड़े हुये और भरत ने दौड़कर राम के चरणों पर अपना शिर टेक दिया। भरत को छाती से लगा कर राम ने आशीर्वाद दिया।

सब मिले और परस्पर अभिवादन आदि किया।

"क्या पिताजी नहीं आये?", राम ने भरत से पूंछा।

"पिता अब संसार में नहीं हैं, राम।"

"क्या?"

"हां, राम, आप वन चले आये और पिता परलोक चल दिये। सुन्दर अयोध्या सूनी पड़ी है।"

"धैर्य धारण करो, भरत। सूर्य अस्त होनेवाला है। सब सायं-सन्ध्योपासनादि से निवृत्त होकर विश्राम करें।"

: २१ :

प्रातः-सन्ध्योपासनादि से निवृत्त होकर राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, माताात्रय, शत्रुघ्न, वसिष्ठ, सुमन्त्र तथा प्रमुख जन एक चबूतरे पर गोलाकार बैठ गये।

राज्याभिषेक की सामग्री को देख कर राम ने पूंछा, "यह क्या, भरत।"

"अभिषिक्त होकर अयोध्या वापिस चलिये, राम। मैं निरपराध हूं, सर्वथा निर्दोष हूं। जननी की भूल को भूल जाइये और......।"

"न तुम दोषी हो, न माता। जो कुछ हुआ उसका परिणाम शुभ हो। भरत, मैं अपनी प्रतिज्ञा को भंग नहीं होने दूंगा। अब तुम ही राजा बनकर चौदह वर्ष तक धर्मपूर्वक प्रजा की

सेवा करो ।"

"हम में आप ही ज्येष्ठ भ्राता हैं । आप राजा बनने के अधिकारी हैं । मैं तो आपका भृत्य बनकर आपकी सेवा करने से ही परम सौभाग्य प्राप्त करूंगा ।"

"मैं अपने चौदह वर्ष के वनवास के संकल्प को शिथिल करने में सर्वथा असमर्थ हूं ।"

"पिता तो अब नहीं हैं । परन्तु जिस माता ने आपको वनवास का आदेश दिया था, वह स्वयं आपको लिवाने आई हैं ।

"मैं माता से निवेदन करूंगा कि वे मुझे प्रतिज्ञाभंग का दोषी बनाने का प्रयत्न न करें ।"

वसिष्ठ और सुमन्त्र ने भी प्रबल प्रेरणा की, परन्तु राम लौटने को सहमत न हुये ।

भरत निरुपाय से शिर झुकाये बैठे रहे ।

"यदि आप अयोध्या नहीं चलते तो मुझे भी अपने साथ चित्रकूट पर रहने की अनुमति प्रदान कीजिये", भरत ने राम से विनय की ।

"कदापि नहीं", राम ने सद्यः उत्तर दिया । "द्वितीय ज्येष्ठ बन्धु होने के नाते तुम्हें मेरी अनुपस्थिति में शासन-भार वहन करके प्रजा की सेवा करनी चाहिये । तुम अपने कर्तव्य से च्युत नहीं हो सकते ।"

भरत की आंखों से टप-टप आंसू टपकने लगे । आंखें पोंछ कर भरत आकाश की ओर देखने लगा । उसके हृदय में प्रकाश-सा आया । राम के चरणों पर शिर रखकर भरत ने दोनों

हाथों से राम की चरण-पादुकायें हस्तगत करलीं और खड़ा होकर बोला, "राम की अनुपस्थिति में राम के सिंहासन पर भरत नहीं, राम की यह चरणपादुकायें आसीन होंगी। भरत तो केवल सेवकवत् कार्य करेगा।"

राम को खड़ा होते देखकर सब खड़े हो गये। भरत को छाती से लगाकर राम बोले, "जाओ भरत, धर्मपूर्वक राज्य करो।"

"राज्य तो आपकी यह चरणपादुकायें करेंगी। मैं तो आपके पुनरागमन तक आपके समान तापस-वेश में नगर के बाहर ऐसी ही पर्णशाला में निवास करूंगा और कन्द-मूल-फल खाकर निर्वाह करूंगा। मैं आपके साथ ही राजधानी में प्रवेश करूंगा। कार्तिक अमावस्या को आपने अयोध्या से प्रस्थान किया था। चौदह वर्ष की समाप्ति पर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के सायं यदि आप अयोध्या न आये तो मैं उसी सायं जीवित चिताग्नि में प्रवेश कर जाऊंगा।"

सब साथियों सहित भरत ने चित्रकूट से प्रस्थान किया। रामवत् तापसी वेश धारण करके भरत ने स्वभार्या-सहित अयोध्या से बाहर नन्दीग्राम में निवास किया। राम की पादुकायें राम के सिंहासन पर स्थापित करादी गयीं। भरत नन्दीग्राम में रहकर ऋषियों तथा अमात्यों के परामर्श से राजकाज करने लगे।

समस्त भूमण्डल पर राम की व्रतपालना तथा भरत की साधुता की सूचना विद्युत्-वेग से फैल गयी।

: २२ :

लगभग तीन वर्ष चित्रकूट पर निवास करके तीनों महा-मानव अन्य अरण्यों तथा पर्वतों के पर्यटन के लिये निकले। घूमते-घामते अत्रि ऋषि के आश्रम में पहुंचे।

अत्रि ऋषि और उनकी भार्या दोनों ही अति वृद्ध थे। तीनों ने ऋषि-दम्पती की प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम किया। ऋषि ने आशीर्वाद देकर बैठने का संकेत किया। पांचों यज्ञ-शाला में यज्ञवेदि के चारों ओर कुछ क्षण मौन बैठे रहे।

मौन भंग करते हुए अत्रि ऋषि बोले, "राम, तुमने अपने जीवन से मर्यादापालन तथा धर्मपरायणता का जो आदर्श स्थापित किया है, उसकी सुगन्धि से आज सम्पूर्ण भूमण्डल सुवासित हो रहा है। तुम सचमुच मर्यादापुरुषोत्तम हो।"

"आपके इस आशीर्वाद के लिये, ऋषिश्रेष्ठ, मैं बहुत आभारी हूं। आपका आशीर्वाद पाकर मैं आज सौभाग्यशाली बन गया हूं," राम ने अतिशय आदरपूर्ण स्वर में कहा।

"सीते, तुम भी धन्य हो," सीता की ओर देखकर अनुसूया बोलीं, "नारी-समाज ही नहीं, सम्पूर्ण मानव-समाज युग-युग तुम्हारे गुणों की गाथा गाता रहेगा। तुमने पतिव्रत धर्म का अनुपम उदाहरण उपस्थित किया है।"

अधोदृष्टि से सीता बोलीं, "माता, आपके इन आशीर्वादपूर्ण शब्दों से मुझे एक अलौकिक प्रेरणा-सी प्राप्त हो रही है। आप मुझे कुछ उपदेश करें।"

अनुसूया ने सीता को अनेक उपदेशप्रद बातें कहीं। पतिपरायणता का उपदेश करते हुए अनुसूया ने कहा, "जो

नारियां स्वार्थ, सुख या काम की भावना से पतिपरायणा हैं, वे अधम कोटि की नारियां हैं। उत्कृष्ट नारियां वे हैं जो कर्तव्यबुद्धि तथा धर्म-भावना से पतिनिष्ठा होती हैं।"

अत्रि ऋषि के आश्रम से प्रस्थान कर तीनों दण्डक-वन में प्रविष्ट हुये। कुछ मास, मन्दाकिनी तीर पर महर्षि सुतीक्ष्ण के सुतीक्ष्णाश्रम में रहे। इस प्रकार लगभग दस वर्ष तक असंख्य वनों और पर्वतों में भ्रमण, तथा अनेक आश्रमों में निवास, करते हुए अगस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि-आश्रमों में वेदवेदांगों के अतिरिक्त ब्रह्मचारियों को शस्त्रास्त्रों की विशेष शिक्षा दी जाती थी। अकेले अगस्त्य ऋषि के आश्रम में उस समय सोलह हजार ब्रह्मचारी शिक्षा पाते थे और शस्त्रास्त्रों का विपुल भण्डार था।

: २३ :

अगस्त्य ऋषि से राम को ज्ञात हुआ कि बाली की सहायता से लंकाधीश रावण ने आर्यावर्त के दक्षिण में एक विशाल प्रदेश पर अधिकार कर लिया है और शनैः-शनैः आगे बढ़ने का उपक्रम कर रहा है। अगस्त्य, राम और लक्ष्मण ने मन्त्रणा की और एक निश्चित योजना बनाई।

तदनुसार, राम लक्ष्मण और सीता पंचवटी पहुंचे। लक्ष्मण ने एक उत्तम पर्णशाला बनाई और तीनों ने वहां निवास किया।

पंचवटी के निकट ही तपस्वी, विरक्त महात्मा, जटायु

निवास करते थे। इनका मुख्य नाम तो सर्वथा विस्मृत होगया था, परन्तु इनकी श्वेत लम्बी जटाओं के कारण लोग इन्हें जटायु कहते थे। राम का आगमन सुनते ही महात्मा जटायु ने बतलाया कि वे महाराजा दशरथ के चिरपरिचित सखा हैं, तो राम, सीता और लक्ष्मण ने उनका बड़ा आदर किया।

राम का अभिप्राय जानकर महात्मा जटायु ने सब प्रकार की रक्षा व सेवा का वचन दिया। साथ ही तीनों को बहुत सतर्क व सावधान रहने का परामर्श दिया। बात-ही-बात में लक्ष्मण कैकेयी की निन्दा करने लगा। राम ने भर्त्सना की, "लक्ष्मण, माता की निन्दा करना अनार्य आचार है। मातृनिष्ठ माता के किसी भी व्यवहार में अनिष्ट का चिन्तन नहीं करते।"

पंचवटी, गोदावरी के निकट रावण द्वारा विजित प्रदेश में, एक बड़े ही सुरम्य वन में स्थित थी। कतिपय योजन की दूरी पर रावण की एक सैनिक छावनी थी, जिसका सेनापति था खर और उपसेनापति था दूषण।

इसी छावनी में उस समय रावण की सुवीरा भगिनी, शूर्पणखा आई हुई थी। यह महिला यद्यपि आयु में अतिवृद्धा थी, पर थी बड़ी निर्भय, शूर और युद्धप्रिय।

पंचवटी में राम के आगमन तथा निवास का समाचार पाकर, खर ने दूषण तथा शूर्पणखा से मन्त्रणा की। खर ने कहा, "यह अगस्त्य और राम का हमें अपने इस विजित प्रदेश से निकाल बाहर करने के षडयन्त्र की

भूमिका है। राम को पंचवटी से निकाल बाहर करके अगस्त्य के आश्रम को सद्यः अपने अधिकार में लेना चाहिये। साथ ही हमारी सीमाओं के निकटवर्ती अन्य समस्त आश्रमों को भी, जिनमें सहस्रों सशस्त्र आर्य युवक विद्यार्थी हमारे विरुद्ध सैनिक मोर्चे बनाये हुये हैं, अविलम्ब विध्वस्त करके आश्रमवासियों को मृत्यु के घाट उतारना चाहिये। ऋषियों के ये सब तथाकथित आश्रम वास्तव में सैनिक छावनियां हैं और इन सबका कर्णधार, सूत्र-संचालक ऋषि अगस्त्य है।"

तीनों ने मिलकर एक योजना बनाई, जिसका प्रारम्भ शूर्पणखा से होना था।

: २४ :

राम, सीता और लक्ष्मण पर्णशाला के सामने बैठे हुए प्रकृति का सौन्दर्य अवलोकन कर रहे थे कि शूर्पणखा वहां आ धमकी।

"आप लोग कौन हैं ?" शूपर्णणा ने तर्जकर पूंछा।

"देवी, मैं राम हूं। यह मेरी धर्मिणी सीता है। यह मेरा अनुज लक्ष्मण है।" राम ने भद्रता के साथ उत्तर दिया।

"आप लोगों ने यहां हमारी सीमा में आकर डेरा क्यों डाला है ?"

"देवि, जैसा कि विश्वविदित है, हम चौदह वर्ष के वनवास पर यतिवत् वन-वन भ्रमण कर रहे हैं। उस अवधि की पूर्ति में कुछ ही मास शेष हैं। घूमते-घूमते इधर

आ निकले हैं। किसी के भी राज्य में यतियों को कहीं रोक-टोक नहीं होती।"

"मैं आदेश देती हूँ कि आप लोग सद्यः हमारी सीमा से बाहर चले जायें।"

"देवि, नारियों से वादविवाद या झगड़ा करना आर्य शील के विपरीत है। हमारे इह-निवास में किसी को कोई आपत्ति न होनी चाहिये।"

"मैं अन्तिम बार पुनः आदेश देती हूं कि आप लोग इसी क्षण यहां से चले जायें।"

इससे पूर्व कि राम कुछ बोलें, लक्ष्मण ने आवेश में भरकर शूर्पणखा से कहा, "देवि, अपना रास्ता लो। हमें यहां से कोई नहीं हटा सकता। हम जब तक चाहेंगे तब तक यहीं रहेंगे।"

शूर्पणखा लक्ष्मण के इस अवज्ञासूचक तथा अपमानजनक उत्तर पर क्रोध से लाल होगयी और द्रुत गति से चलदी, यह कहती हुई, "आप लोग इस अवज्ञा, और अपमान के परिणाम भुगतने के लिये समुद्यत रहें।"

सम्राट् रावण की भगिनी के आदेश की अवज्ञा की गयी और लक्ष्मण ने अपमानसूचक शब्दों में उसको झिड़का, यही लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा की नाक का काटा जाना था। 'नाक काटना' या 'नाक कटना' एक प्रयोग [ईडियम] है, जो अवज्ञा और अपमान के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

शूर्पणखा सीधी खर के पास पहुँची। युद्ध की तैयारी दोनों ओर से थी ही। इधर से खर, दूषण और शूर्पणखा

ने अपने चौदह सहस्त्र सीमारक्षक सैनिकों के साथ आक्रमण किया और उधर से राम–लक्ष्मण ने अगस्त्याश्रम के सहस्रों योद्धाओं के साथ आभिमुख्य किया। खर और दूषण-सहित लगभग समस्त सीमारक्षक खेत रहे। रामपक्ष के योद्धाओं तथा देवों—ऋषियों ने विजेता राम पर पुष्पवर्षा की।

: २५ :

अकम्पन ने रावण को खर-दूषण तथा सीमारक्षकों के वध की सूचना दी। रावण ने क्रोध से अतिशय उत्तेजित होकर आर्यावर्त पर सद्यः आक्रमण करने का आदेश दिया। अकम्पन और मारीच ने रावण को समझाया कि उत्तेजना में कोई अयुक्त पग उठाना ठीक न होगा।

शूर्पणखा ने सुझाया, "आर्यावर्त में जाकर युद्ध करना अनीतिमत्ता होगी। लंका से आर्यावर्त को जल तथा आकाश-मार्ग से सैन्य और सामग्री ले जाना और पहुँचाते रहना अति दुष्कर होगा। अच्छा हो कि युद्ध को लंका में लाया जाये। यदि राम युद्धार्थ लंका में आये तो आर्यावर्तीय पक्ष असुविधा में होगा और हम सुविधा में होंगे। लंका संसार में अद्वितीय सुसज्ज दुर्ग है। आर्यावर्तीय सेना वहां के अज्ञात चक्रों में फंसकर स्वयं नष्ट हो जायेगी। राम की सेना का संहार करके और राम को परास्त करके हम आर्यावर्त में अपने राज्यविस्तार का मार्ग प्रशस्त कर सकेंगे।"

रावण को यह सुझाव मान्य और प्रशस्त प्रतीत हुआ और वह उत्सुकता के साथ बोला, "परन्तु युद्ध को लंका में

लाया किस प्रकार जाये ।"

"इसका समाधान मेरे पास है," शूर्पणखा ने उत्तर दिया ।

"वह क्या," रावण ने पूछा ।

"राम की भार्या सीता का हरण करके उसे यहां लाया जाये । राम आर्य है । वह सीताहरण के अपमान को सहन न कर सकेगा । वह सीता के त्राण के लिये यहां अवश्य आयेगा और युद्ध करेगा । और हम उसे यहां पूर्ण पराजित करने में निस्सन्देह सफल होंगे ।"

रावण को शूर्पणखा की यह युक्ति बहुत पसन्द आई । उसने मारीच से इस कार्य में सहायता मांगी । मारीच बोला, "रावण, नारी का हरण करना तेरे जैसे पराक्रमी राजा के लिये शोभनीय नहीं है । और, छल से नारीहरण तो पाप की पराकाष्ठा है । फिर, यह भी संदिग्ध है कि युद्ध को लंका में लाने से लंका की विजय होगी । आर्या सीता के अपहरण से समूचे आर्यावर्त में जो प्रचण्ड ज्वाला धधकेगी, उसका परिणाम लंका के विध्वंस के अतिरिक्त अन्य कुछ न होगा ।"

रावण मारीच की इस उक्ति पर अत्यन्त रुष्ट और क्रुद्ध होकर बोला, "मारीच, तुझे लंका की सैन्यशक्ति और लंका के दुर्ग की अजेयता का ज्ञान प्रतीत नहीं होता । तुझे मेरे अभिमुख ऐसी बातें कहने में संकोच और लज्जा का न होना आश्चर्य की बात है ।" मारीच ने शान्त भाव से उत्तर दिया, "राजन् सदा प्रिय बोलने वाले मनुष्य संसार

में सुलभ होते हैं। परन्तु अप्रिय लेकिन हितकारी बात के कहने और सुनने वाले, दोनों ही, दुर्लभ हैं।"

मारीच ने फिर कहा, "रावण, विश्वामित्र के आश्रम पर मैं राम और लक्ष्मण के अतुल बल और अमित पराक्रम का परिचय पा चुका हूं। मैं फिर यही परामर्श दूंगा कि इस समय मौन का ही अवलम्ब किया जाये और उचित अवसर की प्रतीक्षा की जाये।"

रावण न माना और सीताहरण की विधि विचारने लगा।

: २६ :

रावण की योजनानुसार मारीच का पालतू हरिण सीता की पर्णशाला के समीप छोड़ा गया। सीता शाला के अभिमुख फूल चुन रही थी। हरिण को देखते ही सीता उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होगयी और सहसा बोली, "अहा, देखिये राम, कैसा सुन्दर हरिण। इसे जीवित पकड़िये। इसे पालेंगे और अयोध्या ले चलेंगे।" राम ने गर्दन उठाई। "ओह, अद्भुत हरिण," कहकर राम ने धनुष-बाण उठाये और हरिण का पीछा किया। "तुम यहीं सीता के पास रहना," जाते-जाते राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया।

मृग को जीवित पकड़ने की लालसा में राम उसका पीछा करते हुए बहुत दूर निकल गये।

"राम को गये बहुत देर होगयी, लक्ष्मण। तुम जाओ। उन्हें शीघ्र लौटा कर लाओ," सीता ने कम्पित स्वर में कहा।

"चिन्ता न कीजिये, देवि। वीर राम का कोई अनिष्ट नहीं कर सकता," लक्ष्मण ने निवेदन किया।

"किन्तु सूर्य अस्त होनेवाला है, लक्ष्मण। तुम अविलम्ब जाओ। उन्हें वापिस लिवा लाओ," सीता ने पुनः कहा।

"जो आज्ञा," कह कर लक्ष्मण उसी ओर चल दिये, जिधर हरिण और राम गये थे।

सूर्य अस्त हो गया। न राम लौटे न लक्ष्मण। सीता अधीर हो रही थी। वह शाला के अभिमुख पुष्पों की झाड़ियों में खड़ी हुई एक टक उसी ओर देख रही थी, जिधर राम और लक्ष्मण गये थे। सहसा किसी ने पीछे से आकर सीता को अधर उठा लिया।

"कौन ?"

"रावण।"

"राम दौड़ो। लक्ष्मण शीघ्र आओ।"

"देवि, सब प्रयास व्यर्थ होगा। वे दोनों बहुत दूर हैं। नीचे घाटी में लघु विमान है। कुछ ही क्षणों में तुम लंका की ओर उड़ी जा रही होगी।"

घाटी के नीचे स्थित, ध्वनिरहित लघु विमान में रावण ने संघर्ष करती हुई सीता को पटका ही था कि महात्मा जटायु उधर आ निकले।

"मैं अति वृद्ध हूं और इस समय निहत्था हूं। पर एक आर्य नारी का अपमान सहन नहीं कर सकता", यह कहते हुए जटायु रावण की ओर झपटे। एक ही वार में रावण ने जटायु को घायल करके धराशायी कर दिया। क्षण-भर में ही विमान

आकाश में चढ़ कर लंका की ओर उड़ने लगा। रावण विमान का संचालन कर रहा था और कतिपय पिशाच सीता के दोनों और बैठे हुए थे।

सीता शोक से पागल-सी हो गयी। उसने अपने बहुमूल्य आभूषण उतारे और एक ह्रस्ववस्त्र [रूमाल] में लपेट कर उन पिशाचों से कहा, "तुम यह लो और मुझे नीचे कूद कर जान गंवाने दो।" फिर उद्विग्न होकर सीता ने वह पोटली नीचे पटक दी, जो नीचे एक पर्वतशिखर पर आसीन सुग्रीव व हनुमान के मध्य में जाकर पड़ी।

राम व लक्ष्मण लौट कर पर्णशाला आये। सीता को खोजते-खोजते दोनों घाटी में उतरे। "सीते, सीते," राम ने सवेग पुकारा। "यहां आओ", सीता के बजाय घायल जटायु ने उत्तर दिया। जटायु ने वह घटना सुनाई और बातें करते-करते तत्क्षण महात्मा जटायु का वहीं प्राणान्त हो गया।

"यह अक्षम्य है। रावण अब संसार में अधिक जीवित नहीं रह सकता", राम ने लक्ष्मण की ओर देखते हुए कहा। "मैं रावण के साथ रावण की लंका को ध्वस्त किये बिना अयोध्या की ओर मुख न करूंगा", लक्ष्मण ने आकाश की ओर दोनों भुजायें उठा कर कहा।

उसी समय जटायु की अन्त्येष्टि की गयी और दोनों ने खुले आकाश के नीचे वहीं एक चट्टान पर वह निशा व्यतीत की।

: २७ :

प्रातः राम व लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत को पार कर रहे थे कि दूर से सुग्रीव ने उन्हें देखा।

हनुमान को सम्बोधन करते हुए सुग्रीव ने कहा, "देखिये, वे दो वीर कौन हैं। कहीं वे बाली के नवीन जासूस तो नहीं हैं ?"

हनुमान पीछे से दोनों के समीप पहुंच कर बोले, "आप दोनों इस प्रदेश में नवागन्तुक प्रतीत होते हैं। क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूं ?"

दोनों ने पीछे फिर कर देखा। हनुमान का अभिवादन स्वीकारते हुए राम बोले, "हां, भद्र, हम यहां अपरिचित हैं और एक समस्या का समाधान खोज रहे हैं।"

"क्या मैं आपकी समस्या को जान सकता हूं ?", हनुमान ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"क्यों नहीं", राम ने उत्तर दिया।

लक्ष्मण ने हनुमान को आदि से अन्त तक सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया।

"यहां सुग्रीव की सहायता के लिये एक सुयोग है", ऐसा विचारते हुए हनुमान ने राम व लक्ष्मण को सुग्रीव की कष्टगाथा सुनानी प्रारम्भ की। "किष्किन्धा राज्य का अधीश बाली अपने कनिष्ठ बन्धु सुग्रीव का वध करके उस [सुग्रीव] की रूपवती लावण्यमयी भार्या को अपनाना चाहता है। बाली के भय से त्रस्त सुग्रीव यहां समीप ही मलयाचल पर एक गुहा में छिपा हुआ है और सुग्रीव की भार्या बाली के महल में है। आप सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य प्राप्त कराने का कोई उपाय कर सकें तो इस राज्य के सम्पूर्ण साधनों और स्रोतों का उपयोग आपकी सहायतार्थ हो सकेगा।"

"यह एक दैवी संयोग प्रतीत होता है", यह सोचते हुए राम ने हनुमान को प्रेरणा की, "आप महाराज सुग्रीव से हमारी भेंट कराइये।"

राम और लक्ष्मण को वहीं छोड़ कर हनुमान सुग्रीव से मन्त्रणा करने के लिये चले गये।

राम हनुमान से बहुत प्रभावित हुए। हनुमान के वहां से चले जाने पर राम लक्ष्मण से हनुमान के विषय में कहने लगे, "लक्ष्मण, देखो, हनुमान कितना सुसंस्कृत भाषण करता है। जिसने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का अध्ययन न किया हो, वह इस प्रकार नहीं बोल सकता। अवश्य, इसने समस्त व्याकरण पढ़ा है, क्योंकि इतना अधिक भाषण करते हुए एक शब्द का भी इसने अशुद्ध उच्चारण नहीं किया। वाक्य नपे-तुले और व्यवस्थित व मध्यम स्वर में बोलता है। इसे सुनकर हृदय हर्षित हो उठा है। भला, अपनी चित्र-विचित्र सुन्दर वाणी से यह किसके हृदय को प्रसन्न नहीं कर लेगा।"

: २८ :

सुग्रीव से मन्त्रणा करके हनुमान ने राम व लक्ष्मण को मलयाचल पर ले जाकर सुग्रीव की गुहा के अभिमुख खड़ा किया। सूचना पाते ही सुग्रीव बाहर निकला। राम व लक्ष्मण का परिचय देकर राम की ओर संकेत करते हुए हनुमान ने सुग्रीव से कहा, "इस वन में रहते हुए इन संयमी महात्मा की भार्या रावण ने हर ली है। अतः ये

आपकी शरण में आये हैं ।"

राम की ओर अपना दक्षिण हस्त बढ़ाते हुए सुग्रीव ने राम से कहा, "यदि आप मेरी मित्रता स्वीकार करें, तो मेरी यह भुजा प्रस्तुत है । आइये, हाथ मिलाइये और हम दोनों मित्रता की ध्रुव मर्यादा में बंध जायें ।"

राम व सुग्रीव ने परस्पर हाथ मिलाकर मित्रता स्थापित की । सद्यः हनुमान ने यज्ञाग्नि प्रज्वलित की । राम व सुग्रीव ने यज्ञाग्नि की प्रदक्षिणा करके मित्रता की परिपुष्टि की और एक दूसरे को वचन दिया, "आज से तुम मेरे अन्तरङ्ग सखा हो । हम दोनों में से एक का सुख और दुःख दूसरे सखा का भी सुख और दुःख होगा ।"

दोनों मित्र गुहा में बैठकर परस्पर प्रेमपूर्वक वार्तालाप करने लगे । प्रथम सुग्रीव ने अपनी कष्ट-गाथा सुनाई । राम बोले, "सुग्रीव, यदि आप मेरी सहायता न भी करें, तो भी मेरे जैसे मर्यादापालक धर्मपरायण व्यक्ति का यह नैतिक कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं ऐसे पापी को दण्ड दूं जो अपने कनिष्ठ बन्धु की भार्या के साथ पापाचार करता है। ऐसे पापी के राज्य में प्रजा बहुत दुःखी रहती है । मैं सद्यः बाली का वध करके आपको सिंहासनारूढ करूंगा ।"

कतिपय आभूषण दिखाकर सुग्रीव ने कहा, "रावण के वायुयान में से उस दिन हमें 'राम राम' पुकारती हुई एक देवी का करुणक्रन्दन सुनाई दिया था और साथ ही यह पोटली वायुयान से हमारे समीप गिरी ।"

"लक्ष्मण, पहिचानो तो । क्या ये आभूषण सीता के हैं?"

राम बोले ।

"राम, मैं न तो इन भुजबन्धों को और न इन कुण्डलों को पहिचानता हूं । हां, इन नूपुरों को मैं अवश्य पहिचानता हूं क्योंकि चरणवन्दना करते समय नित्य इन्हें देखा करता था ।" लक्ष्मण ने उत्तर दिया ।

बाली के वध की योजना पर विचार हुआ । राम ने सुग्रीव से कहा, "अपने वनवास की अवधि की समाप्ति तक मैं नगर या ग्राम में प्रवेश नहीं कर सकता । आप ऐसा उपाय करें कि बाली राजधानी से बाहर आजाये । हम राजधानी के समीप बाह्यवर्ती प्रदेश में स्थित रहेंगे ।"

निश्चित योजना के अनुसार राम, लक्ष्मण, हनुमान, नल तथा नील राजधानी के समीपवर्ती अरण्य में स्थित हो गये और सुग्रीव ने एकाकी राजधानी में प्रवेश करके बाली के महल के मुख्य द्वार पर जाकर बाली को ललकारा । बाली सुग्रीव पर झपटा । सुग्रीव उस अरण्य की दिशा में लपका । आगे-आगे सुग्रीव भागा जा रहा था और पीछे-पीछे बाली । दोनों ने अरण्य में प्रवेश किया । सुग्रीव बहुत आगे था और बाली बहुत पीछे । राम ने पीछे से बाली पर एक घातक बाण छोड़ा और एक ही वार में घायल होकर बाली धराशायी हो गया । राम, लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव आदि बाली के समीप आये ।

राम-लक्ष्मण का परिचय पाकर मरणासन्न बाली ने राम से कहा, "राम, मेरी आप से कोई शत्रुता न थी । आपने अकारण मेरे साथ यह अन्याय क्यों किया ?"

"बाली", राम ने उत्तर दिया, "तुमने कनिष्ठ बन्धु की भार्या के साथ, जो तुम्हारी पुत्री के समान थी, पापाचार किया। तुमने स्वदेश पर आक्रमण करने वाले विदेशीय रावण की सहायता की और उसके साथ मित्रता की। तुम्हारे ये दोनों ही अपराध ऐसे जघन्य हैं कि मृत्यु भी पर्याप्त दण्ड नहीं है।"

श्रावण की वृष्टि की झड़ियों में बात करते-करते बाली के प्राणपखेरू उड़ गये।

सूचना पाकर बाली की भार्या, सुन्दरी तारा अपने पुत्र, अंगद-सहित वहां आई और बाली के शव पर रोदन करने लगी।

बाली की अन्त्येष्टि की गयी। राम का आदेश और आशीर्वाद पाकर सुग्रीव गद्दी पर बैठा। अंगद सुग्रीव का उत्तराधिकारी [युवराज] घोषित किया गया।

: २६ :

श्रावण से आश्विन तक किष्किन्धा में युद्ध की प्रबल तैयारियां होती रहीं। नील ने भारी सैन्य संग्रह किया। हनुमान ने दक्षिण प्रदेश के राज्य-राज्य में भ्रमण करके अपनी वक्तृत्व–कला के प्रभाव से सब राजाओं से धन, जन, आयुध, खाद्य आदि सब प्रकार का सहयोग प्राप्त किया। समुद्र के किनारे एक विशाल सुदृढ़ और सुरक्षित बन्दरगाह तथा वायुयानक्षेत्र बनाया गया। इस बन्दरगाह के समीप सैन्य तथा युद्धसामग्री का संग्रह किया गया।

युद्धसज्जा पूर्ण होने पर लंका का आन्तरिक भेद लेने

और लंका की सैनिक शक्ति का रहस्य जानने के लिये हनुमान ने एक लघु वायुयान-द्वारा लंका राज्य की राजधानी, लंका नगर को प्रस्थान किया। उस समय आर्यावर्त और लंका के बीच समुद्र की चौड़ाई १०० योजन [४०० कोस] थी। हनुमान ने सम्पूर्ण यात्रा एक ही छलांग [उड़ान] में पार की। यान को समीप के सघन जंगल में छिपा कर हनुमान ने यतिवेष में लंका नगर में प्रवेश किया। हनुमान, कई दिन, तक, राजधानी में प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण स्थानों में भ्रमण करते हुए जनसाधारण के सम्पर्क में आकर भेद लेते रहे।

हनुमान ने लंका में सर्वत्र वेदों का अध्ययन व पाठ होते देखा। घर-घर में यज्ञशालायें थीं और प्रत्येक गृह में दोनों समय यज्ञ होता था। सुवर्ण, हीरा, मणि से प्रजा सम्पन्न थी। तृण, काष्ठ या मिट्टी का बना कोई घर न था। नगर के सम्पूर्ण आवास पीले पत्थरों के बने हुए थे। वर्णाश्रमधर्म का यथाविधि पालन होता था। समस्त प्रजा परम आस्तिक और पूर्ण धार्मिक थी।

रावण के पुष्पक विमान को देखकर हनुमान आश्चर्य-चकित होगये। उसमें शतशः मनुष्यों के बैठने व शयन के प्रबन्ध के अतिरिक्त सुन्दर जलाशय, मनोहर क्रीडास्थल, विद्युत्प्रकाश, भोजन आदि की सब सुविधायें थीं।

हनुमान ने लंका के राजमहलों का अवलोकन किया, सैनिक छावनियों का पर्यटन किया, गुप्त मार्गों का पता लगाया।

रावण की पतिव्रता, परम सुन्दरी, भार्या मन्दोदरी को देख कर हनुमान स्तब्ध रह गये। मन्दोदरी अपने समय की विश्व में सुन्दरतम नारी थी। पता लगाने पर हनुमान को ज्ञात हुआ कि रावण तथा उसके पुत्र-पौत्र आदि की सब भार्यायें विवाहिता, पवित्रचरित्रा और पतिव्रता थीं। किसी की भी भार्या बलात् हरण की हुई न थी।

सीता के विषय में हनुमान को ज्ञात हुआ कि रावण ने सीता को अशोक वाटिका में समुचित आदर के साथ ठहराया हुआ है। अशोक वाटिका में ठहराते समय रावण ने सीता से कहा था, "सीते, यहां आप उसी प्रकार निवास करें, जिस प्रकार आप जनक अथवा दशरथ के महलों में निवास करती थीं। आपका अपमान करना मेरा उद्देश्य नहीं। मेरी शत्रुता राम से है। नारी का अपमान करना मेरा धर्म नहीं।"

साथ ही हनुमान को पता लगा कि रावण तथा विभीषण के पारस्परिक सम्बन्ध बहुत कटु हैं और दोनों एक दूसरे का अहित चाहते हैं। हनुमान ने सबकी दृष्टि बचाकर विभीषण के महल में ही विभीषण से भेंट की। विभीषण ने हनुमान को अनेक रहस्य प्रकट किये, उपाय सुझाये और युद्ध में सब प्रकार से राम की सहायता करने का वचन दिया। हनुमान ने भी विभीषण को विश्वास दिलाया कि रावण की पराजय अथवा रावण का वध होने पर राम विभीषण को ही लंका का अधीश बनायेंगे। विभीषण से हनुमान को यह भी ज्ञात हुआ कि विभीषण की पुत्री, कला प्रायः सीता से मिलने जाया करती है और सीता को सब प्रकार की सुविधा व

सान्त्वना देती रहती है।

विभीषण से विदा लेकर हनुमान ने अशोक वाटिका की ओर प्रस्थान किया। अशोक वाटिका के परकोटे के, नदी की ओर के, द्वार के बाहर शिंशिपा वृक्ष के नीचे एक अति सुरम्य स्थान पर जब हनुमान आये तो सहसा उनको ऐसा लगा कि भगवती सीता सन्ध्या के लिए अवश्य ही ऐसे सुरम्य, जलीय तट-युक्त स्थल पर आती होंगी। यह अनुमान कर वे वहीं रुक गये।

इतने ही में शुभासन हाथ में लिए सीता सन्ध्यार्थ वहां आयीं। हनुमान ने चिह्नों से सीता को पहिचानकर प्रणाम किया और राम के दूत के रूप में अपना नाम बताकर अपना परिचय दिया। परिचय देने के उपरान्त हनुमान ने राम की सोने की अंगूठी सीता को समर्पित की। सीता ने अंगूठी को पहिचान कर उसे अपने वाम हस्त की अंगुलि में धारण किया।

हनुमान ने सीताहरण के बाद से अब तक के सब समाचार तथा राम व लक्ष्मण के योगक्षेम सुनाये और विदा होते हुए सीता से निवेदन किया, "महारानी, हम बहुत शीघ्र यहां आकर लंका विजय करेंगे।"

"ऐसा ही हो। लो, मेरा यह चूडामणि मेरी निशानी के रूप में महाराज राम को भेंट करना", यह कहकर सीता ने हनुमान को विदा दी।

: ३० :

सीता से विदा होकर हनुमान राजमार्ग पर जारहे थे कि

रावण के पुत्र अक्ष की अध्यक्षता में सैनिकों की एक टुकड़ी ने हनुमान पर आक्रमण कर दिया । हनुमान ने आत्मरक्षा में प्रबल पराक्रम किया और अक्ष तथा अनेक सैनिकों को मार गिराया । इतने ही में, रावण का ज्येष्ठ पुत्र, इन्द्रजीत [मेघनाद] वहां आ पहुंचा और उसने ब्रह्मास्त्र से हनुमान को जकड़ कर बन्दी बना लिया ।

हनुमान के बन्दी होने की सूचना कुछ ही क्षणों में वात-प्रेरित प्रचण्ड अग्नि के समान सम्पूर्ण राजधानी में फैल गयी । जनता में तीव्र उत्तेजना [सन्सेशन] की एक तीक्ष्ण लहर दौड़ गयी । शत्रु का एक गुप्तचर कई दिनों से राजधानी में घूमता-फिरता रहा और सीता तक पहुंच गया, किन्तु लंका का गुप्तचर-विभाग उसे भांप न सका । इससे राजधानी के नागरिकों में एक आग-सी लग गयी । यही था हनुमान द्वारा लंका-दहन ।

दरबार में रावण के अभिमुख हनुमान को उपस्थित किया गया । "तुम कौन हो और यहां क्यों आये हो ?", रावण ने तर्जकर सरोष हनुमान से प्रश्न किया ।

"लंकेश, मैं धर्मात्मा राम का राजदूत हूं और महाराज सुग्रीव का मंत्री हूं । महाराज ने आपके प्रति समुचित समादर तथा शुभ कामनाओं के साथ मुझे आपकी सेवा में प्रेषा है । महाराज ने कहलाया है कि धर्मात्मा राम की धर्मशीला, पतिव्रता, निरपराध भार्या, सीता को आप शान्तिपूर्वक लौटादें, ताकि व्यर्थ का युद्ध तथा नरसंहार न होने पाये", हनुमान ने उत्तर दिया ।

"यदि तुम सचमुच राजदूत थे तो तुम्हें यहां आते ही मेरे महामंत्री को अपने आगमन की सूचना देनी थी और तुम्हें राज्य का अतिथि बनकर यहां रहना चाहिये था", रावण ने झुँझलाहट के साथ कहा ।

पूर्व इसके कि हनुमान कुछ कहते, रावण ने आदेश दिया, "इसे प्राणदण्ड दिया जाना चाहिये । मैं आज्ञा करता हूं कि इसे इसी क्षण बाहर लेजाकर वध कर दिया जाये ।"

पार्श्व में लेजाकर विभीषण ने रावण को समझाया, "यहां इस समय हनुमान का वध राजनीतिक दृष्टि से बड़ी भारी भूल और भयानक अनीतिमत्ता होगी, जबकि हनुमान स्वयं अपने को सार्वजनिक रूप से राजदूत होने की घोषणा कर रहा है । दूत सदा-सर्वत्र अवध्य होता है ।"

रावण शान्त हो गया और उसने पुनः घोषणा की, "क्योंकि हनुमान अपने आपको राम का राजदूत घोषित करते हैं, मैं उन्हें प्राणदण्ड से मुक्त करके ससम्मान विदा करता हूं ।"

"मैं आपकी ओर से क्या सन्देश ले जाऊं", हनुमान ने पूछा ।

"महाराज सुग्रीव इस प्रसंग से सर्वथा तटस्थ रहें; उनके लिये यही उचित होगा । और राम को मेरे बन्धुओं के वध तथा मेरी बहिन की अवज्ञा का प्रतिफल चखना ही होगा ।"

"तथाऽस्तु", कहकर हनुमान ने प्रस्थान किया और एक ही उड़ान में राम की छावनी में वापिस पहुंच कर सप्रणाम राम को सीता का चूडामणि भेंट किया ।

: ३१ :

चूडामणि पहिचान कर राम ने उसे रख लिया और खड़े होकर हनुमान को गले से लगाया।

हनुमान ने लंका का सब वृत्तान्त सुनाया। विभीषण की सहायता का आश्वासन दिया। लंका के दुर्गों का तथा वहां की सैन्यों का रहस्य बताते हुए हनुमान ने कहा, "लंका राजधानी का परकोटा अभेद्य है। नगर में, भूमि के ऊपर के दुर्गों के अतिरिक्त, भूमि के नीचे विशाल रहस्यपूर्ण दुर्ग हैं। नगर के चारों ओर दुस्तर खाइयां हैं, जो यन्त्र घुमाने-मात्र से जलपूर्ण अथवा जलरहित होजाती हैं। मूल लंका नगर एक भिन्न पर्वत पर है। दूर-दूर पर्वतों पर अनेक कृत्रिम राजधानियां तथा कृत्रिम दुर्ग हैं। लाखों प्रबल योद्धा हैं। किन्तु विभीषण की मित्रता से सब कठिनाइयों को पार करके हम विजय सम्पादन करेंगे और माता सीता का निश्चय त्राण करेंगे।"

सुग्रीव के सेनापतित्व तथा हनुमान, अंगद, नील और जामवन्त के नेतृत्व में सेनाओं ने वायुयानों द्वारा लंका को प्रस्थान किया और शस्त्रास्त्र, अन्य युद्धसामग्री तथा खाद्य-पदार्थ जलपोतों द्वारा भेजे गये। पीछे से सैन्य व सामग्री पहुँचते रहने का प्रबन्ध किया गया। विभीषण की मन्त्रणा तथा प्रबन्ध के अनुसार लंका राजधानी से कतिपय योजन की दूरी पर एक नियत अरण्य में पड़ाव डाला गया। यह सब ऐसे गुप्त रूप से किया गया कि रावण को उसका तब तक तनिक भी पता न चला जब तक कि सुग्रीव की छावनी

पूर्णरूप से सज्ज व सुरक्षित न होगयी ।

जासूसों से रामागमन तथा सुग्रीव के सैन्यसंग्रह की सूचना पाते ही रावण ने अपने मन्त्रियों तथा सामन्तों से मन्त्रणा की । रावण के ज्येष्ठ पुत्र मेघनाद [इन्द्रजीत] को युद्ध का सर्वोपरि सेनापति नियत किया गया ।

अपना नाटक प्रारम्भ करते हुए विभीषण ने रावण से निवेदन किया, "युद्ध से मुझे न अपने कुल का मंगल दृष्टिगोचर होता है और न लंका राज्य का । अतः मैं प्रस्ताव करता हूं कि सीता को ससम्मान लौटा कर राम व सुग्रीव से सन्धि की जाये ।" इस नाटक का वही परिणाम हुआ जिस दृष्टि से यह खेला गया था । रावण और मेघनाद ने विभीषण को फटकारा । विभीषण सरोष चार मन्त्रियों-सहित दरबार से उठकर बाहर चला गया और उसने अपने मित्रों, सामन्तों तथा सैन्यों-सहित राम के पक्ष में रावण के विरुद्ध लड़ने का निश्चय किया । सबको साथ लेकर वह रातों-रात राम की छावनी में जा पहुंचा और वहां अपना एक पृथक् पड़ाव डाल दिया ।

रावण के मोर्चे में एक भयंकर दरार पड़ गयी । लंका राज्य के कर्णधार तथा प्रजाजन युद्ध के औचित्य-अनौचित्य के विषय में दो भागों में बंट गये । स्वयं रावण के मन्त्रियों, सामन्तों तथा पारिवारिक जनों में दो मत होगये ।

: ३२ :

छावनी के मध्य में स्थित केन्द्रीय तम्बू में राम, लक्ष्मण,

सुग्रीव तथा हनुमान ने मन्त्रणा की कि विभीषण को विश्वास में लिया जाये या नहीं। सुग्रीव ने असंख्य नीतिवाक्यों से प्रमाणित करते हुए परामर्श दिया कि "विभीषण को विश्वास में न लिया जाये। वह शत्रु का बन्धु है। किसी भी क्षण उसकी भावनायें रावण के पक्ष में उभर सकती हैं और हमारे मध्य में रहकर वह हमारा भारी अनिष्ट कर सकता है।"

सुग्रीव का अनुमोदन करते हुए लक्ष्मण बोले, "विभीषण को विश्वास में लेना और उसे अपने मध्य में रखना प्रत्यक्षतः अपने सर्वनाश को निमन्त्रण देना है। कोई बन्धु अपने बन्धु का अनिष्ट कब तक और कहां तक सहन करेगा। अपने सहोदर और अपने राष्ट्र का अहित देखकर वह धोखे से राम का वध करके पुनः रावण के पास भाग जायेगा। नीतिमत्ता इसी में है कि विभीषण को उसके सामन्तों तथा सैनिकों सहित युद्धबन्दी बना लिया जाये।"

मुस्कराते हुए राम ने हनुमान की ओर रहस्यपूर्ण दृष्टि घुमाई। अतिशय दृढ़ ध्वनि और विश्वस्त मुद्रा के साथ हनुमान ने कहा, "मैं विभीषण का अच्छी प्रकार अध्ययन कर चुका हूं। दीर्घ समय से विभीषण और रावण के बीच भीषण कटुता है। विभीषण लंका के राज्य का भूखा है। यदि उसे यह पूर्ण विश्वास दिला दिया जाये कि रावण के मारे जाने पर विभीषण को ही लंका का अधीश बनाया जायेगा तो विभीषण एक मन से हमारा साथ देगा और उस अवस्था में हमारी विजय असन्दिग्ध होजायेगी।"

लक्ष्मण की मुखाकृति से राम को लगा कि लक्ष्मण को हनुमान की बात रुचिकर नहीं लगी। पूर्व इसके कि लक्ष्मण अपने ओष्ठ खोलते, राम ने लक्ष्मण के कान में कहा, "लक्ष्मण, सब भाई भरत के समान नहीं होते, न सब पुत्र मेरे जैसे होते हैं, और न ही सब मित्र तुम्हारे समान होते हैं।"

लक्ष्मण शान्त होगये। हनुमान गये और विभीषण को लिवा लाये। परस्पर अभिवादन के पश्चात् राम ने विभीषण को स्नेहपूर्वक अपने पास बिठाया और दोनों मर्म के साथ बातचीत करने लगे।

राम, "मैं दशग्रीव रावण को, प्रहस्त आदि उसके सहायकों-सहित मारकर तुम्हें लंका का राजा बनाऊंगा, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूं।"

विभीषण, "राक्षसों के वध और लंका की विजय में जी-जान से मैं सहायता करूंगा तथा आपकी सेनाओं का मार्ग प्रदर्शन करूंगा।"

राम का आदेश पाकर लक्ष्मण समुद्र का जल ले आये और सागर के उस जल से राम ने सद्यः विभीषण का राज्याभिषेक कर दिया। युद्ध की समाप्ति तो दूर, युद्धारम्भ से भी पूर्व, राम ने विभीषण को लंका का अधीश स्वीकार कर लिया। नीतिपटु हनुमान ने बधाई देते हुए घोष किया, "लंकाधिपति महाराज़ विभीषण की जय।"

आश्वस्त होकर विभीषण ने राम को लंका के समस्त रहस्य बता दिये।

राम की छावनी और लंका के राज्य में यह सूचना सर्वत्र

अविलम्ब प्रसारित करदी गयी। लंका की सेना और जनता दोनों ही के उत्साह में एक स्वाभाविक क्षीणता-सी आगयी। सबको रावण की विजय में शंका-सी होने लगी।

: ३३ :

रावण ने शुक नामक कूटनीतिज्ञ को सुग्रीव तथा विभीषण को फोड़ने के लिये भेजा, किन्तु उसे विफलता हुई।

लंका की शोभा और छटा अवलोकन करके राम मुग्ध हो गये। सहसा उनके मन में आया, "काश, युद्ध न होता और संसार का यह सुन्दरतम नगर ध्वस्त न होता।"

राम की छावनी का संगठन किया गया और युद्ध की योजना तथा व्यूहरचना की गयी।

उधर रावण ने शुक व सारण नामक दो भेदियों को राम के सैन्य और बल का पता लगाने के लिये भेजा। विभीषण ने दोनों को पहिचान लिया और बन्दी बनाकर राम के अभिमुख प्रस्तुत किया। राम ने दोनों को मुक्त करा दिया। शुक-सारण ने वापिस पहुंचकर रावण से निवेदन किया, "राम का बल और सैन्य अजेय है। नीतिमत्ता इसी में है कि ससम्मान सीता को लौटा दिया जाये और राम से सन्धि करली जाये।"

रावण ने शार्दूल नामक एक दक्ष गुप्तचर को पुनः राम के बल तथा सैन्य का भेद लेने भेजा। उसने भी राम के बल तथा सैन्य को अजेय पाया। शार्दूल ने वापिस आकर रावण को राम से सन्धि करने का परामर्श दिया।

युद्धारम्भ करने से पूर्व राम ने अंगद को शान्ति का प्रयास करने के लिये रावण के पास भेजा।

"लंकेश, धर्मात्मा राम चाहते हैं कि आप सीता को आदरपूर्वक लौटा दें। युद्ध में दोनों ही पक्षों की अपार हानि होगी। आप स्वयं धर्मशास्त्र और राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित हैं। व्यर्थ के रक्तपात और विनाश को रोकने में आप सर्वथा समर्थ हैं," अंगद ने रावण से प्रेरणापूर्वक निवेदन किया।

"अंगद, मेरे देश पर आक्रमण करने के बाद अब तुम सन्धि का संदेश लेकर आये हो। राम और उनके साथी अपने-अपने सैन्यों सहित प्रथम लंका से वापिस चले जायें। तदुपरान्त सन्धि की वार्ता का कुछ औचित्य हो सकता है," रावण ने उत्तर दिया।

वार्तालाप में कटुता आ गयी और रावण तथा अंगद में द्वन्द्वयुद्ध की नौबत आ गयी। मन्त्रियों ने रावण को समझाया कि अंगद दूत है। दूत पर आक्रमण करना उचित नहीं। अंगद ने दृढ़ता के साथ रावण का प्रतिरोध किया। यही रावण की राजसभा में अंगद का पैर गाढ़ना था। पैर गाढ़ने का अर्थ दृढ़ता-द्योतन होता है।

अंगद ने आकर राम को सूचित किया कि सन्धि का प्रयास असफल हुआ।

युद्ध आरम्भ हुआ। लंका के पक्ष के लोग रावण की जय बोलते थे और रामपक्ष के लोग महाराजा सुग्रीव की जय बोलते थे।

: ३४ :

प्रथम दिन अंगद ने मेघनाद की गदा, रथ, अश्व, सारथि खण्ड-खण्ड कर डाले। क्षुब्ध होकर मेघनाद ने तुमुल युद्ध किया और राम-लक्ष्मण को शस्त्रों से वेध दिया। अन्ततः मेघनाद ने नागफांस का प्रयोग किया और राम-लक्ष्मण को धराशायी कर दिया। दोनों पक्षों ने उन्हें वीरगति को प्राप्त हुआ समझ लिया। लंका में आनन्दोल्लास मनाया जाने लगा और इधर सुग्रीव की छावनी में शोक छा गया।

रावण ने मेघनाद को हृदय से लगाकर साधुवाद कहा। पुष्पक विमान में सवार कराकर, आकाश से सीता को मृत राम-लक्ष्मण को दिखाया गया। सीता व्यग्र होकर विलाप करने लगी।

अब विभीषण आया और उसने राम-लक्ष्मण की मुद्रा को देखकर कहा, "ये दोनों अभी जीवित हैं।" लंका के राजवैद्य, सुषेण, जो विभीषण के साथ उसके कैम्प में ही रहते थे, बुलाये गये। उनके उपचार से थोड़ी ही देर में राम को चेतना आ गई। लक्ष्मण को अचेतावस्था में देखकर राम अधीर हो उठे। कुछ काल पश्चात् लक्ष्मण भी सचेत हो गये। राक्षसी त्रिजटा को जब यह सब गुप्त रूप से ज्ञात हुआ तो उसने जाकर सीता को बताया कि राम व लक्ष्मण दोनों स्वस्थ व सकुशल हैं। सीता को ढाढ़स बंधा।

दूसरे दिन पुनः युद्धारम्भ हुआ। राम-लक्ष्मण को जीवित देखकर राक्षसों में आश्चर्य व आतंक छा गया। धूम्राक्ष व हनुमान का भयंकर साम्मुख्य हुआ। धूम्राक्ष मारा गया और

राक्षससेना भाग खड़ी हुई।

तीसरे दिन रावण ने वज्रदंष्ट्र के सेनापतित्व में अतुल सेना युद्धक्षेत्र में झोंक दी। घनवृष्टि की तरह शस्त्रास्त्रों का प्रक्षेपण हुआ। फिर ढाल तलवार चलीं। अंगद ने वज्रदंष्ट्र का सिर काट कर धरा पर गिरा दिया। राक्षस सेना अव्यवस्थितावस्था में रणक्षेत्र से पलायन कर गई।

चौथी बार, अकम्पन की अध्यक्षता में रावण की विशाल सेना ने रणक्षेत्र में प्रवेश किया। उधर से हनुमान ने सेना-सहित प्रहार किया। अकम्पन हनुमान के शरों व शस्त्रों को खण्ड-खण्ड करके गिराने लगा। हनुमान ने मरने या मारने का संकल्प करके वज्रास्त्र तथा वृक्षास्त्र का प्रयोग किया। अकम्पन बुरी तरह घायल होकर भूमि पर गिरा ही था कि हनुमान ने तलवार से उसका शिर धड़ से अलग कर दिया।

: ३५ :

अकम्पन के मरने पर लंका की अतुल सेना भाग खड़ी हुई। अमित शस्त्रास्त्र सुग्रीव की सेना के हाथ लगा।

यह समाचार पाते ही रावण अत्यन्त क्षुब्ध और अधीर हो उठा। सद्यः अपने मन्त्रिमण्डल को बुलाकर रावण ने लंका की दृढ़तम मोर्चेबन्दी की योजना बनाई और वह तुरन्त कार्यान्वित की गयी।

स्वयं सेनापति प्रहस्त की अधीनता में सुग्रीव की सेना पर आक्रमण किया गया। श्रेष्ठतम मारू-बाजे बजते हुए दिव्य रथ में स्थित प्रहस्त सुग्रीव की सेना पर प्रचण्ड उग्रता के साथ

टूटा। विभीषण ने सुग्रीव की सेना व सेनापतियों को प्रहस्त के सब दाव-पेंच अच्छी प्रकार समझा दिये। युद्ध शूलप्रहार से प्रारम्भ हुआ। युद्धक्षेत्र में सहसा ज्वार-भाटा चढ़ा। प्रहस्त ने प्रलयंकर संग्राम किया।

विभीषण द्वारा सुशिक्षित व सावधान होकर नील ने प्रहस्त का आभिमुख्य किया। योजनानुसार नील ने प्रहस्त के शस्त्रास्त्र काट डाले। निःशस्त्र प्रहस्त मूसलास्त्र लेकर रथ से कूद पड़ा और सुग्रीव की सेना पर अन्धाधुन्ध प्रहार करने लगा। प्रहस्त ने क्रुद्ध होकर नील के शिर पर भयंकर वार किया। शिर से घायल होकर भी नील ने प्रहस्त की छाती में शूल [भाला] भोंक दिया और पुनः फुर्ती के साथ उसने प्रहस्त के शिर पर गदा ठोक दी। प्रहस्त मारा गया। लंका की सेना में भगदड़ मच गयी।

रावण घोर गम्भीर होकर विचार करने लगा, "जिन्होंने प्रहस्त जैसे वीरशिरोमणि को मार गिराया, वे साधारण वीर नहीं हो सकते।" रावण ने विशिष्ट सामन्तों और सेनाओं के सहित सुग्रीव की सेना पर स्वयं आक्रमण किया। भयंकर युद्धवाद्य बज रहे थे।

रावण, इन्द्रजीत, महोदर, कुम्भ, निकुम्भ और लंका की सेना साक्षात् मृत्यु का रूप धारण करके रणक्षेत्र में उतरे।

विभीषण ने सुग्रीव, राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि सबको रावण के चिह्नों का परिचय दिया और रावण की यौध्य चालें सबको अच्छी प्रकार समझायीं; किसका किस प्रकार वध करना, यह भी बताया।

रावण के ऊपर दृष्टि पड़ते ही सहसा राम के मुख से विभीषण के प्रति निकल पड़ा, "अहो, दीप्त, महातेजस्वी, राक्षसेश्वर रावण ! सूर्य के समान, इसकी ओर दृष्टि लगाये रहना कठिन हो रहा है। कितना तेज है इस वीर में !

: ३६ :

राम और लक्ष्मण रावण की ओर झपटे। रावण के अभिमुख अति समीप पहुँच कर सुग्रीव ने रावण पर वार किया। थोड़ी ही देर में रावण ने सुग्रीव को घायल करके भूमि पर गिरा दिया और सुग्रीव की सेना का भयंकर संहार किया।

फिर लक्ष्मण रावण के सामने आकर डटे और हनुमान ने चपलता के साथ आगे बढ़कर रावण पर वार किया। रावण ने हनुमान को भी बुरी तरह घायल करके नीचे पटक दिया।

अब नील सामने आया। रावण ने उसे भी घायल कर दिया। नील मूर्छित होकर नीचे गिर गया।

आगे बढ़कर रावण लक्ष्मण पर झपटा। लक्ष्मण ने अद्भुत पराक्रम करके रावण के शस्त्रों को आकाश में ही खण्ड-खण्ड करना प्रारम्भ किया। अन्ततः रावण ने लक्ष्मण पर ब्रह्मास्त्र छोड़ा और उसे शिर से घायल कर दिया। संभल कर लक्ष्मण ने वार किया और रावण के धनुष को तोड़ डाला। खीझ कर रावण ने लक्ष्मण पर अमोघास्त्र छोड़ा, जिससे सम्पूर्ण रणक्षेत्र में विषैला धुंआ छा गया और लक्ष्मण का सीना घायल होगया। लक्ष्मण मूर्छा से पीड़ित होकर

गिर पड़े ।

रावण ने लक्ष्मण को उठाकर अपने रथ में पटक, उड़ा कर लेजाना चाहा कि संभल कर ठीक समय पर हनुमान आ पहुँचे । उन्होंने प्रबल वज्रप्रहार करके रावण को क्षणभर के लिये मूर्छित-सा कर दिया और लक्ष्मण को उठाकर राम के डेरे में ले गये ।

उधर सद्यः राम रावण के सामने आये और रावण के शस्त्रसमूह व रथ को बेकार कर दिया । सायंसन्ध्या निकट आती देखकर राम ने रावण से कहा, "वीर, प्रातः से अब तक निरन्तर युद्ध करते-करते आप श्रान्त होगये हैं । नितान्त घोर युद्ध करके आपने निस्सन्देह बड़े वीरत्व का परिचय दिया है । आज आप के हाथ से हमारी सेना के अनेक वीर मारे व घायल किये गये हैं । अतिशय श्रान्त होने के कारण इस समय आप का वध करना सरल है । किन्तु थके हुए शत्रु पर प्रहार करना आर्य मर्यादा के विरुद्ध है । अतः युद्ध बन्द करके अब आप जाइये । स्वस्थ होकर जब आप पुनः रणक्षेत्र में आयेंगे तब मैं आपका युद्धोचित स्वागत समादर करूंगा ।"

मन-ही-मन राम के उदार शील की प्रशंसा करता हुआ रावण लंका नगर में प्रविष्ट हुआ और राम अपने डेरे में पहुँच लक्ष्मण के उपचार में लगे ।

: ३७ :

रावण ने रात्रि में ही सद्यः अपना मन्त्रिमण्डल बुलाया ।

और पादाघात से युद्ध करने लगा। विद्युतास्त्र से राम ने उसके दोनों पग भी काट डाले।

"कुम्भकर्ण मारा गया", यह सुनते ही रावण मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा।

: ३८ :

सूर्योदय के साथ रावण के पुत्र, त्रिशिरा, देवांतक, अतिकाय तथा नरान्तक के अधिनायकत्व में रण प्रचण्ड हुआ और सूर्यास्त होते-होते प्रचुर सेना-सहित चारों खेत रहे।

फिर दिन निकलते ही इन्द्रजीत [मेघनाद] ने रावण के अभिमुख राम व लक्ष्मण के वध का संकल्प करके विपुल सेना सहित रणक्षेत्र को प्रयाण किया।

भारी तुमुल युद्ध हुआ और मेघनाद ने एक-एक करके नील, नल, जाम्बवान, सुग्रीव, अंगद को घायल करके पटक दिया। सुग्रीव की सेना में भगदड़ मच गयी। हनुमान व सुषेण को घायल करके गिराता हुआ, मेघनाद राम और लक्ष्मण की ओर झपटा और क्षण-भर में ही दोनों को घायल करके गिरा दिया।

रात्रि होगयी और मेघनाद विजयघोषों के साथ लंका नगर में प्रविष्ट हुआ।

: ३९ :

एक-एक करके रावण के परिवार के सब वीर मारे गये। केवल उसका ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजीत [मेघनाद] शेष रहा।

रावण ने इन्द्रजीत को आदेश दिया, "कल राम व लक्ष्मण का वध करके ही आओ।"

इन्द्रजीत ने प्रातः वेद की ऋचाओं से विजययाग किया। अन्तर्धान होने वाले सूर्यरथ पर ब्रह्मास्त्र-सहित सवार होकर विशाल सेना के साथ इन्द्रजीत ने संग्रामभूमि में प्रवेश किया।

आकाश में अन्तर्धान होकर इन्द्रजीत ने राम व लक्ष्मण पर शस्त्रों की वर्षा प्रारम्भ की। राम व लक्ष्मण ने दिव्यास्त्रों के प्रयोग से मेघनाद पर शस्त्र छोड़े। मेघनाद ने धूमास्त्रों से अंधेरा कर दिया। राम ने विद्युतास्त्र से मेघनाद के रथ का अवलोकन करके शस्त्रों का प्रयोग किया। मेघनाद ने अन्धास्त्र से घोर घटाटोप कर दिया। राम की ओर से राक्षसों के शस्त्रों के घोष के अनुसार शब्दभेदी बाण छोड़े जाने लगे।

विभीषण को लक्ष्मण के साथ देखकर मेघनाद ने विभीषण से कहा, "विभीषण, तुम मेरे पिता साक्षात् भ्राता हो। जिस की छाया में तुम्हारा जीवन बीता है, उस भ्राता के प्रति तुम आज द्रोह कैसे कर रहे हो ? धर्मदूषक, दुर्मते, जाति, सखा, धर्म, सगापन क्या ये तेरे लिये कुछ भी मूल्य नहीं रखते ? हे दुर्बुद्धे, बड़े दुःख की बात है। सज्जन तेरी निन्दा करेंगे क्योंकि तू अपने लोगों को त्यागकर दूसरों का दास बना फिरता है। शिथिल, नीच बुद्धि वाला तू नहीं समझ रहा, कहां स्वजनों में संवास और कहां पराश्रय। पराया चाहे गुणी हो, और अपना चाहे निर्गुण हो, अपना निर्गुण फिर भी श्रेयस्कर है, क्योंकि पराया आखिर पराया ही तो है। जो अपनों को छोड़कर परपक्ष की सेवा करता है वह, अपनों के

नाश के उपरान्त, उन्हीं परायों के द्वारा मारा जाता है।"

विभीषण ने खिसियाकर उत्तर दिया, "ओ अभिमानी, दुष्ट और दुर्विनीत राक्षस, काल के पाश में बद्ध, मरणासन्न तू इस समय मुझे जो चाहे कह ले।"

लक्ष्मण व इन्द्रजीत में भीषण संग्राम छिड़ गया। लक्ष्मण, हनुमान व विभीषण ने घेरा डालकर इन्द्रजीत को थका दिया। वीरों को सम्बोधन करते हुए विभीषण ने कहा, "मेघनाद इस समय बहुत थका हुआ है। आज उसे जीवित न जाने दो।"

मेघनाद विभीषण पर झपटा। लक्ष्मण ने आगे बढ़कर मेघनाद के सारथि को मार डाला। फिर रथ को तोड़ दिया। मेघनाद पैदल ही युद्धरत हुआ। दूसरा हेमरथ आया और मेघनाद उस पर स्थित हो युद्ध करने लगा। लक्ष्मण ने पुनः मेघनाद के सारथि व रथ को समाप्त कर दिया। मेघनाद निरुपाय हो फिर पैदल ही युद्ध करने लगा। लक्ष्मण ने ऐन्द्रास्त्र घुमाया और मेघनाद का सिर कटकर भूमि पर गिर गया।

रावण नितान्त अकेला रह गया।

: ४० :

ब्रह्मकवच तथा ब्रह्मास्त्र धारण करके स्वर्णरथ में स्थित होकर रावण शेष समस्त सेना-सहित सरोष रणक्षेत्र में उतरा और सीधा राम व लक्ष्मण के अभिमुख स्थित होकर संग्राम करने लगा। रावण ने भंयकर तामस अस्त्रों का प्रयोग किया। राम ने परमास्त्र से रावण के मस्तक को वेध दिया। लक्ष्मण ने रावण के सारथि को मार गिराया और

रावण का अभ्यस्त धनुष तोड़ डाला। विभीषण ने रावण के रथ के चारों घोड़े मार गिराये। रावण ने पैदल ही विभीषण पर वार किया। लक्ष्मण ने सतर्कता और तत्परता के साथ विभीषण की रक्षा की। रावण द्वारा विभीषण पर छोड़ी गयी शक्ति लक्ष्मण के वक्ष को वेधती हुई पार निकल गयी। लक्ष्मण मरणासन्न होकर भूमि पर गिर पड़ा।

सुग्रीव व हनुमान को लक्ष्मण की सेवा में नियुक्त करके राम ने रावण पर प्रलयंकर प्रहार किया। रावण घबराकर भाग खड़ा हुआ।

राम लक्ष्मण की चिन्ताजनक अवस्था देखकर कहने लगे, "हा, लक्ष्मण के वध हो जाने पर राज्य से भी क्या ? मैं माता सुमित्रा को किस प्रकार ढाढ़स बंधाऊंगा ? माता कौसल्या और कैकेयी को क्या कहूंगा ? और महाबली भाई शत्रुघ्न को क्या कहकर सान्त्वना दूंगा ? जिसके साथ मैंने वन को प्रस्थान किया था, उसके बिना मैं वापिस कैसे जाऊंगा ? बन्धुनाश से तो यहीं मर जाना अच्छा है। हाय, पूर्वजन्म में मैंने क्या दुष्कृत किया था, जो मेरा धार्मिक भ्राता मेरे सामने ही मर गया ? हा, नरश्रेष्ठ भ्रातः, तू मुझे किसके भरोसे छोड़कर अकेला चला गया ? वीर, मैं रो रहा हूं। शोकार्त मुझसे तू बोलता क्यों नहीं ? उठ, सो क्यों रहा है ? अपनी आंखों से मुझ दीन की दशा देख।"

सुषेण ने राम को सान्त्वना देकर हनुमान से कहा, "वीर, ऋषभ पर्वत से सूर्योदय से पूर्व विशल्यकारिणी, सावर्ण्यकारिणी, संजीनकारिणी तथा सन्धानकारिणी बूटियां लेकर आइये,

अन्यथा लक्ष्मण के जीवन की रक्षा न हो पायेगी।" हनुमान इतनी दूरी से बूटियां लेकर सूर्योदय से पूर्व आ सकेंगे, आशा कम थी।

ज्यों-ज्यों सूर्योदय का समय निकट आता जाता था, त्यों-त्यों रामदल की अधीरता बढ़ती जा रही थी। हनुमान विमान को सवेग उड़ाते हुए आशातीत शीघ्रता से आवश्यकता से कहीं अधिक बूटियां लेकर सूर्योदय से पर्याप्त पूर्व वापिस आगये।

बूटियों की अतिशय अधिक मात्रा को देखकर सबके मुख से निकला "हनुमान पर्वत ही उठा लाये।"

हनुमान के गमनागमन की तीव्र गति का वर्णन आलंकारिक ढंग से करते हुए कवि ने लिखा है कि हनुमान ने सूर्य को अपने मुख में बन्द करके रख लिया, अर्थात् सूर्योदय की गति से हनुमान के विमान की गति बहुत अधिक तीव्र थी।

सुषेण ने सद्यः बूटियों का प्रयोग किया। लक्ष्मण सचेत होकर उठ खड़े हुए। राम ने साश्रु लक्ष्मण का आलिंगन किया।

प्रभात होते ही रावण अपनी सम्पूर्ण सेना और पूर्ण सज्जा के साथ रणक्षेत्र में आया। राम और रावण में रोमांचकारी द्विरथ युद्ध हुआ। राम ने फुर्ती से ब्रह्मास्त्र छोड़ा, जो रावण के हृदय को वेधता हुआ पार निकल गया।

रावण वीरगति को प्राप्त हुआ। राम के आदेश से विभीषण ने रावण का अन्त्येष्टि कृत्य किया।

: ४१ :

राम के डेरे पर विभीषण का राजतिलक हुआ।

अशोक वाटिका पहुँच कर हनुमान ने सीता को आद्योपान्त सम्पूर्ण विवरण सुनाया।

विभीषण स्वयं सीता को लिवाने गये। रणक्षेत्र में से गुज़रते हुए सीता ने रक्तरंजित मैदान और लाशों के ढेर देखे। उस भीषण दृश्य को देखकर सीता का सम्पूर्ण हर्षोल्लास म्लानता में परिवर्तित होगया। सीता का नारी-हृदय वैराग्य और ग्लानि से युक्त हो गया।

सीता को वैराग्यव्यथित देख कर राम ने समझाया, "सीते, यह नरसंहार आपके व्यक्तित्व के लिये नहीं अपि तु नारी जाति के मान की रक्षा तथा आर्य जाति के गौरव की सुरक्षा के लिये हुआ है। इस नरहत्या का पाप न आप पर है न हम पर।"

सीता के हृदय में वैराग्य रेखा इतनी गहरी खिंच गयी थी वह कितने भी सान्त्वनावचनों और उपदेशों से लेश-मात्र भी मिटायी या हल्की न की जा सकी।

विभीषण ने चाहा कि राम कुछ दिन और ठहरें, किन्तु भरत के योगक्षेम की चिन्ता के कारण राम ने यह स्वीकार न किया।

सुग्रीव आदि की सेनायें यथाक्रम व्यवस्थित रूप से अपने-अपने राज्यों को लौट पड़ीं। विभीषण ने पुष्पक विमान को सर्वतः भरपूर और सुसज्ज करके राम को भेंट किया। राम, सीता और लक्ष्मण पुष्पक विमान में

सवार होकर अयोध्या को रवाना हुए। हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, अंगद, नल, नील, सुषेण आदि राम को अयोध्या तक पहुँचाने के लिये पुष्पक में सवार हुए।

अयोध्या जाते हुए मार्ग में सुग्रीव ने किष्किन्धा में पुष्पक विमान को उतरवाया। भरत की चिन्ता से राम ने हनुमान को सर्वाग्र अयोध्या भेज दिया, ताकि वह समय पर पहुंच कर भरत को सूचित करदें कि राम अयोध्या आ रहे हैं। अगले दिन राम सब साथियों–सहित पुनः अयोध्या को रवाना हुए। तारा भी सीता के साथ पुष्पक में सवार हुई। उधर एक दिन पूर्व अयोध्या पहुँच कर हनुमान ने भरत को राम के आगमन की सूचना दी। भरत आनन्दविभोर होगये।

भरत के आदेश से सद्यः यज्ञ, याग, दान, पुण्य, वादन, गान होने लगे। सेनायें सज्ज की जाने लगीं। मारू बाजे स्वागत-गान बजाने लगे। पताकायें फहराई जाने लगीं। अयोध्या नव वधू की तरह सजधज गयी। नन्दी आश्रम से अयोध्या और उसके राजमहलों तक राजसी सजावट की गयी। पूर्ण सज्जा के साथ, भरत राम के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। राजमातायें तथा राजरानियां अपने-अपने रथों पर बैठी आकाश की ओर निहार रही थीं। भरत पैदल ही सबके आगे टहल रहे थे।

आकाश में पुष्पक को पहिचान कर हनुमान ने भरत को संकेत किया। भरत ने हर्षोन्मत्त होकर घोष किया, "राम आ गये।" सुनते ही सेनानियों तथा रथारोहियों के घोड़े हर्ष से

हिनहिनाने लगे। मारू बाजों की गूंज से आकाश गूंज उठा। पुष्पक नीचे उतरा। लक्षों कण्ठों से सहसा एक साथ निकला, "मर्यादापुरुषोत्तम राम की जय। धर्मावतार राम की जय। आर्यगौरव राम की जय। विक्रम-विजयी राम की जय।"

: ४२ :

राम सर्वप्रथम पुष्पक से बाहर निकले और पीछे-पीछे सीता, लक्ष्मण तथा अन्य सब। राम और भरत का मिलाप हुआ।

भक्त और भगवान् दोनों थे निराले रंग में।
एक बिन्दु आंख में था दूसरा प्याले में था॥

साधु भरत आगे बढ़े। सीता को प्रणाम कर लक्ष्मण के साथ हृदय से हृदय मिलाया। राम ने विभीषण, सुग्रीव, तारा, अंगद आदि का भरत से परिचय कराया।

सीता, राम व लक्ष्मण माताओं की ओर बढ़े और प्रणाम कर कुशलक्षेम पूंछा। पुनः वसिष्ठ ऋषि के आश्रम पर प्रणाम करने गये।

वसिष्ठ आश्रम से लौट कर राम, सीता व लक्ष्मण फिर स्वागतस्थल पर आये, जहां अपार जनसमूह ने तीनों पर पुष्पवर्षा की और उन्हें पुष्पमालायें पहनाईं।

भरत ने राम को राम की पादुकायें पहिनाकर उनसे निवेदन किया, "आज मेरा जन्म सफल हुआ। मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ। आज में आपको पुनः अयोध्या में आया हुआ देख रहा हूं।"

रघुकुल के इस भ्रातृस्नेह को देखकर सुग्रीव और विभीषण की आंखों में अश्रु छलक आये।

नगरकीर्तन के पश्चात् राम का राज्याभिषेक हुआ। महर्षि वसिष्ठ ने राम के सिर पर राजमुकुट पहिनाया। अभिषिक्त होते ही राम ने घोषणा की, "मैं साधु भरत को अपना उत्तराधिकारी अर्थात् युवराज नियुक्त करता हूं।" "साधु भरत की जय" के घोष से गगन-मण्डल गूंज उठा।

: ४३ :

जैसा कि पहिले वर्णन किया जा चुका है, महारानी सीता रक्तरञ्जित युद्धक्षेत्र को देखकर वैराग्य को प्राप्त हो गई थीं। जब महाराज राम ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर भरत को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया तो उससे महारानी सीता को भारी मर्मवेदना हुई। इस घटना ने उनकी वैराग्य-अग्नि पर घृत डालने का काम किया। वैराग्यवती सीता और अधिक वैराग्यमयी होगई। उन्हें रह-रह कर न जाने क्या-क्या विचार आये।

महाराज राम ने भरत को अपना उत्तराधिकारी इस धर्म-भावना से घोषित किया था कि भरत ने राम के प्रति अपनी अनन्य निष्ठा का परिचय दिया था। भरत का त्याग अनुपम था। किन्तु महारानी सीता के हृदय पर इस घटना से आघात पहुंचना भी स्वाभाविक था। कोई भी माता अपने पुत्र या पुत्रों को उनके अधिकार से वंचित होता देखना चुपचाप सहन नहीं कर सकती। सीता को लगा कि मेरी

सन्तान निरपराध ही राज्याधिकार और सम्राट्-पद से वंचित की जारही है।

राज्याभिषेक के दो-तीन मास पश्चात् सीता गर्भवती हुईं, तो उनकी वह चिन्ता और अधिक तीव्र हो उठी। सीता विचारने लगीं, "जब मेरी सन्तान को राज्य नहीं मिलना है, तो उत्तम यही होगा कि मैं राजमहल को छोड़कर ऋषि वाल्मीकि के आश्रम पर रहने लग जाऊं। राज्यश्री से वंचित होकर मैं और मेरी सन्तान अयोध्या में रहकर दासवत् जीवन क्यों बितायें। इस प्रकार यहां रहने से तो जंगल में तपस्वियों-सा जीवन बिताना कहीं अधिक श्रेयस्कर होगा।"

सीता नित्य ही राम से आग्रह करने लगीं कि "मुझे वाल्मीकि-आश्रम में जाकर निवास करने की अनुमति दीजिये। मेरा वैराग्यपूरित हृदय संसार और सांसारिकता में कोई आनन्द अनुभव नहीं करता है।" राम तो सीता को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। वे सदा सीता का मन बहलाते रहते और सीता के इस आग्रह को टालते रहते।

गर्भवती हुए छः मास बीतने पर एक दिन सीता ने साग्रह निवेदन किया, "आर्य राम, मैं उन पुण्य तपोवनों में निवास करना चाहती हूं, जो गंगा के तीर पर स्थित हैं, जिनमें निर्विकार, तेजस्वी ऋषि निवास करते हैं, जहां लतायें और वृक्ष फलों से लदे रहते हैं, जहां प्राणी प्राणी को प्यार करता है, जहां प्रकृति में भगवान् की लीला के दर्शन होते हैं, जहां न विकार है न वासना, जहां न हिंसा है न छल कपट।"

इस बार सीता ने इतना अधिक आग्रह किया कि राम

उसे टाल न सके। उन्होंने लक्ष्मण को बुलाया और कहा, "लक्ष्मण, महारानी सीता बहुत दिनों से वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में रहने का आग्रह कर रही हैं। तुम वहां जाकर सुचारु व्यवस्था कर आओ। तत्पश्चात् सीता को सुविधापूर्वक वहां लिवा लेजाना।"

:४४:

लक्ष्मण वाल्मीकि-आश्रम गये और वाल्मीकि ऋषि से सीता के वहां रहने की अनुमति मांगी। वहां निवास करने वाले सब ऋषियों और ऋषिपत्नियों ने इस पर अतीव हर्ष प्रकट किया। जब ऋषिपत्नियों को यह ज्ञात हुआ कि सीता गर्भवती हैं, तो उन्होंने कहा, "राम किसी प्रकार की चिन्ता न करें। हम यहां सब व्यवस्था करलेंगी।"

अयोध्या वापिस आकर लक्ष्मण ने राम को सब समाचार सुनाये। राम ने पुनः सीता को प्रेरणा की कि वह वाल्मीकि आश्रम में कुछ दिन विहार करके शीघ्र अयोध्या लौट आये। लक्ष्मण को सम्बोधन करते हुए राम बोले, "गंगातीर पर उन आश्रमों में विहार कराकर तुम शीघ्र सीतासहित यहां आना।"

"तथा अस्तु" कहकर लक्ष्मण एक सुन्दर रथ में सीता को बिठाकर वाल्मीकि–आश्रम को रवाना हुए। कई दिन की यात्रा के बाद जब आश्रम के निकट पहुँचे तो आश्रमवासियों ने रथ को पहिचान लिया। ऋषियों तथा ऋषिपत्नियों ने समुचित सम्मान के साथ सीता व लक्ष्मण का स्वागत किया।

आश्रमवासियों ने पहले से ही सीता के लिये एक उत्तम पर्णशाला निर्माण कर रखी थी। सीता ने उसी में निवास किया। सीता ने पुनः अयोध्या जाना स्वीकार नहीं किया। लक्ष्मण हताश अकेले अयोध्या को लौट गये। राम को जब यह ज्ञात हुआ कि सीता ने सदा के लिये अयोध्या का परित्याग कर दिया है तो उन्हें बड़ी वेदना हुई।

इसके बाद, राम सीता के वियोग में सदा विकल रहने लगे। ऐसा होना सर्वथा स्वाभाविक था। जिस सीता ने वनवास में भी राम का साथ नहीं छोड़ा था, जिस सीता के लिये राम ने लंका का विध्वंस किया, वही सीता अब कभी भी अयोध्या आकर राम के साथ नहीं रहेंगी, यह कम आघात की बात नहीं थी। राम अपने वचन के पूरे थे। वह सार्वजनिक रूप से भरत को अपना युवराज घोषित कर चुके थे। अब वह अपने वचन से कैसे फिर सकते थे? फिर, राम के प्रति भरत की वफ़ादारी भी कुछ कम नहीं थी। राम के प्रति सीता के हृदय में जितना स्नेह था, उससे भी कहीं अधिक स्नेह राम के प्रति भरत के हृदय में था। राम दोनों ओर समान रूप से प्रेम के बन्धन में बंधे थे।

प्रेम और वचन की इस द्विविधा ने राम के मानस में दुःख का एक सागर उमड़ा दिया। जिस राम ने सीता के साथ रहकर संसार की बड़ी-से-बड़ी आपत्ति का सहर्ष और समुस्कान मुकाबिला किया था, वही राम अब सीता के बिना जलविहीन मीन की तरह रात-दिन खिन्न और व्याकुल रहने लगे।

: ४५ :

यथासमय वाल्मीकि-आश्रम में सीता ने दो जुड़वां पुत्र-रत्नों को जन्म दिया, जिनका नाम क्रमशः कुश और लव रखा गया। छः वर्ष की आयु में दोनों कुमारों का यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ और वे यथाविधि आर्ष मर्यादा के अनुसार शिक्षा पाने लगे। दोनों कुमारों ने वेदोपवेदों की शिक्षा प्राप्त की और किशोरावस्था को प्राप्त होने पर उन्होंने शस्त्रास्त्र का यथावत् अभ्यास किया। इस प्रकार कुश और लव सुन्दर यौवनावस्था को प्राप्त हुए। दोनों कुमारों की आकृति और उनका रूप-लावण्य सर्वशः राम से मिलता-जुलता था।

उधर, महाराज राम ने अपने तीनों बन्धुओं और ऋषि-कोटि के मन्त्रियों के सहयोग से धर्मपूर्वक राज्य-कार्य किया और ऐसी सुन्दर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की कि भारत और लंकादि द्वीपों के सभी राजा लोग निष्ठापूर्वक अयोध्या की दृढ़ माण्डलिकता के सूत्र में पिरो लिये गये।

उपयुक्त अवसर पर राम ने अश्वमेध यज्ञ किया, जिसमें सभी माण्डलिक राजे तथा ऋषिजन सम्मिलित हुए। यज्ञ के दिनों में एक दिन ऋषि वाल्मीकि भी सीता और कुश-लव सहित अयोध्या आये।

वाल्मीकि ऋषि राम के अश्वमेध यज्ञ से पूर्व तक का 'रामायण' काव्य लिख चुके थे। ऋषि का आदेश पा कुश और लव ने बड़े सुन्दर ढंग से रामायण के कुछ सर्गों का गान किया। कुमारों का स्वर अलौकिक था और गाने की विधि इतनी सुन्दर थी कि उनका गान सुनकर सारी सभा मन्त्रमुग्ध-

सी होगयी। कुमारों ने जब उस प्रसंग को गाकर सुनाया कि सीता अयोध्या छोड़कर वाल्मीकि-आश्रम को जा रही हैं तो, सब उपस्थितों के अतिरिक्त, राम और सीता का भी हृदय भर आया। सीता का नारी-हृदय उस घड़ी के उमड़ते हुए विषाद के अतिरेक से फट पड़ा और महारानी का तत्क्षण देहावसान होगया।

अश्वमेध का उल्लासपूर्ण वातावरण विषादाच्छन्न होगया। पर यज्ञ न तो स्थगित किया जा सकता था, न अपूर्ण ही छोड़ा जा सकता था। विधान के अनुसार यज्ञ की पूर्णाहुति के दिन सम्राट् के वामांग में महारानी का वेदि पर आसीन होना अनिवार्य होता है। महारानी सीता परलोक सिधार चुकी थीं। शास्त्रमर्यादा का पालन भी आवश्यक था। विधानशास्त्रियों की व्यवस्था के अनुसार सीता की सोने की प्रतिमा राम के वामांग में स्थापित की गयी और अश्वमेध यज्ञ में पूर्णाहुति दी गयी। माण्डलिक राजाओं ने महाराज राम को श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित कीं और अयोध्या साम्राज्य के ताज के प्रति सदा वफ़ादार रहने की शपथ ग्रहण की।

: ४६ :

राम स्वभाव और संस्कार से ऋषि तथा परम योगी थे। उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक अवस्था में पूर्णतया अनासक्त और सर्वथा निर्लेप रहते हुए कर्तव्य का निर्वहन तथा जीवनयापन किया था। संसार की घटनाओं ने उनके पावन हृदय को अतिशय विरक्त बना दिया था। सीता के

सहसा देहावसान की घटना ने उनकी विरक्तता पर घृताहुति का काम किया। उन्हें रह-रह कर सीता के जीवन की दुःखद स्मृतियां सताने लगीं। कुछ मास तक उन्हें ऐसा लगा, मानों उनके स्वभाव, संस्कार और उनकी आत्म-साधनाओं ने उनका साथ छोड़ दिया है।

अपने सम्पूर्ण आत्मसंबल को समेट कर अन्त में राम ने विषाद की अवस्था पर क़ाबू पाया और निर्णय किया कि साम्राज्य का ताज भरत के शिर पर पहिनाकर हिमालय पर निवास करें। भरत की आध्यात्मिक भित्ति राम से भी ऊंची थी। भरत ने साम्राज्य के सिंहासन पर बैठने से साफ़ इंकार कर दिया और कहा, "भरत ने न तो राम के वन जाने पर राम के अधिकार का अपहरण किया था और न वह अब सीता के ज्येष्ठ पुत्र के अधिकार का अपहरण करेगा।" सबके प्रबल आग्रह करने पर भी जब भरत सम्राट् बनने को तैयार न हुए तो भरत के प्रस्तावानुसार कुश को राम के स्थान पर कोसल का राज्य सौंपा गया और लव को उत्तर कोसल का राजा बनाया गया।

कुश और लव के राज्याभिषेक के उपरान्त राम ने सर्व-मेध [सर्व-त्याग]-यज्ञ किया। तत्पश्चात् सब नगर-निवासियों से तथा राज-परिवार से विदा ली। विशाल जन-समूह राम के पीछे हो लिया। सरयू नदी के किनारे पहुंचकर राम ने सबको अयोध्या वापिस लौटा दिया और स्वयं आत्म-साधना के लिये हिमालय की ओर चल पड़े। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी राम के साथ हो लिये। चारों भाई समवयस्क

थे। चारों ही आयु के चतुर्थ सवन में थे। चारों सदा साथ-साथ रहे थे। भला, अब जीवन के अन्तिम छोर में वे वियुक्त कैसे हो सकते थे?

चारों भाई काषाय वस्त्र धारण कर हिमालय के एक, एकान्त, शान्त, सुन्दर, सुरम्य और निर्जन वन में निवास करते हुए, ब्राह्मी स्थिति में, ब्रह्मलीन रहने लगे। आत्म-साधना पूर्ण हुई और चारों ने समाधि की अवस्था में एक साथ अपने-अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर परम पद की प्राप्ति की। चारों का जन्म भी साथ-साथ हुआ था और चारों ने इस लोक से प्रस्थान भी साथ-साथ ही किया।

आये थे साथ-साथ, गये साथ-साथ ही।
आदर्श अमिट छोड़ गये, भ्रातृप्रेम का॥